॥ श्रीः ॥

श्रीमदन्नंभट्टविरचितः

तर्कसंग्रहः।

श्रीमदुदासीनपरमहंसपरमानन्दसमाख्या-
धरेण काशीनिवासिना विरचितया
भाषाटीकया समेतः।

श्रीकृष्णदासात्मजेन गंगाविष्णुना
स्वकीय "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" मुद्रणागारे
मुद्रयित्वा प्रकाशितः।

संवत् १९५४, शके १८१९.

कल्याण—मुंबई.

॥ श्रीः ॥

अथ भाषाटीकासमेतः

तर्कसंग्रहः ।

सोरठा—श्रीपरमात्मा जोय, ध्यान धरत जहँ अघ मिटैं ॥
करो अनुग्रह सोय, मेरी भवपीडा हरो ॥ १ ॥

दोहा—कर कांपै लेखन डिगै, रोम रोम थहराय ॥
पूर्ण कै विधी होय यह, ग्रन्थ कठन यह आय ॥ २ ॥
जो ईश्वर कर है कृपा, पूर्ण होय यह ग्रंथ ॥
बिन कृपा नाहिं पाइये, परमेश्वरको पंथ ॥ ३ ॥
तर्कसंग्रह टीका करूं, भाषामें विस्तार ॥
जे विचार अस को करै, लहैहि पदार्थ सार ॥ ४ ॥

अब प्रथम ग्रन्थकारके मंगलाचरणको दिखाते हैं:—

निधाय हृदि विश्वेशं विधाय गुरुवंदनम् ॥
बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रहः ॥ १ ॥

अन्वयः—मया अन्नम्भट्टोपाध्यायेन तर्कसंग्रहः क्रियते । किं कृत्वा । विश्वेशं हृदि निधाय । पुनः किं कृत्वा । गुरुवंदनं विधाय । कस्मै प्रयोजनाय । बालानां सुखबोधाय ॥ १ ॥

मैं जो अन्नम्भट्टोपाध्याय नाम करके हूं सो मैं तर्कसंग्रह नामक ग्रंथको करता हूं.क्या करके करता हूं, संपूर्ण विश्वका स्वामी जो परमेश्वर उसको हृदयमें स्थापन करके अर्थात् निरंतर उसका ध्यान करके. फिर क्या करके,अपने विद्यागुरुको वंदना करके, इतने करके ग्रन्थके आदिमें ईश्वरका और गुरुका नमस्काररूप मंगलभी दिखा दिया. यद्यपि आगे पूर्वले आचार्योंके बनाये

हुए ग्रन्थ बहुतसे हैं तथापि उनके पढनेसे जलदी पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता है क्योंकि वह अतिकठिन हैं जिसवास्ते उनमें शीघ्र बुद्धि प्रवेश नहीं कर सक्ती है इसवास्ते यह अतिसुगम नवीन ग्रन्थकी रचना करते हैं जिसके पढनेसे बालकोंको शीघ्रही पदार्थोंका बोध हो जावे इसलिये इस ग्रन्थकी रचना निष्फल नहीं है इसी हेतुको लेकर मूलकारने कहा हैः– "बालानां सुखबोधाय" अर्थात् बालकोंको सुखेनतासे बोधके वास्ते (पदार्थोंका विनाही श्रमसे ज्ञानके लिये) यह तर्कसंग्रह नामक ग्रन्थको करते हैं. अब बालकपदके अर्थको लक्षण करके दिखाते हैंः–"अधीतव्याकरणकाव्यकोशोऽनधीतन्यायशास्त्रो बालः" अध्ययन किया है व्याकरण काव्य कोश जिसने और नहीं अध्ययन किया है न्याय जिसने उसका नाम यहांपर बाल है सो ऐसा बालक लेना. यदि इतनाही लक्षण करते "अनधीतन्यायशास्त्रो बालः" अर्थात् नहीं अध्ययन किया है न्याय जिसने उसका नाम बाल है. तब दूध पीनेवाला जो बालक है उसनेभी तो न्यायशास्त्र नहीं अध्ययन किया है वही यहांपर बालक हो जाता सो उसमें अतिव्याप्तिवारणके वास्ते अधीतव्याकरणकाव्यकोशभी कहा वह तो काव्य कोश अधीत है नहीं इसवास्ते उसमें अतिव्याप्ति नहीं जाती और जो इतनाही लक्षण करते "अधीतव्याकरणकाव्यकोशो बालः" तब व्यासादिकोंमें अतिव्याप्ति हो जाती अर्थात् व्यासादिकही बालक हो जाते क्योंकि उनोंनेभी व्याकरण काव्य कोश अध्ययन किया था सो उनमें अतिव्याप्तिके वारणवास्ते "अनधीतन्यायशास्त्रो बालः" कहा सो व्यासादिक अनधीतन्यायशास्त्र नहीं थे किंतु अधीतन्यायशास्त्र थे इसवास्ते उनमेंभी लक्षण नहीं जाता इस

वास्ते जो व्याकरण काव्य कोश पढा हो और न्यायशास्त्र न पढा हो वही यहांपर बालक लेना बालकका लक्षण जो कहा है सो निर्दोष है. और जिसने व्याकरणादिकोंका अध्ययन किया है उसीमें न्यायशास्त्रके पदार्थोंकी ग्रहण और धारण करनेकी सामर्थ्य बन सक्ती है. प्रसिद्ध बालकोंमें नहीं बन सक्ती इसवास्ते ग्रहण धारण शक्तिवालेका नामही बाल है. और "**तर्क्यन्ते प्रतिपाद्यन्ते इति तर्काः द्रव्यादिपदार्थाः तेषां संग्रहः संक्षेपेण स्वरूपकथनं यस्मिन् ग्रन्थे स तर्कसंग्रहः**" जो तर्कना करके प्रतिपादन किये जावें उनका नाम है तर्क अर्थात् द्रव्यादिपदार्थोंका नामही तर्क है. उन द्रव्यादि पदार्थोंका जो संग्रह याने संक्षेपसे उनके स्वरूपका कथन होवे जिस ग्रन्थमें उस ग्रन्थका नाम तर्कसंग्रह है. मंगलाचरणका निरूपणकर दिया ॥ अब पदार्थोंका निरूपण करते हैंः—

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्त पदार्थाः॥

द्रव्य १, गुण २, कर्म ३, सामान्य ४, विशेष ५, समवाय ६, अभाव ७, यह सातही पदार्थ हैं अर्थात् जितना जगत् है-इन सातोंही पदार्थोंके अन्तर्भूत है इनसे बाहर कोईभी वस्तु नहीं है इसवास्ते सातही पदार्थ हैं और "**ज्ञेयत्वं पदार्थसामान्यलक्षणम् । ज्ञेयत्वं नाम ज्ञानविषयत्वम्**" अर्थात् जो ज्ञानका विषय होवे उसीका नाम पदार्थ है यह पदार्थका सामान्य लक्षण कह दिया विशेष लक्षणको आगे कहेंगे प्रत्येक पदार्थके निरूपणकालमें. यद्यपि संसारमें बहुतसे पदार्थ हैं जो कि देशान्तरमें हैं या कालान्तरमें होनेवाले हैं अस्मदादिकोंके ज्ञानका विषय नहीं हैं तथापि वे ईश्वरके ज्ञानका विषय हैं इसवास्ते उनमेंभी लक्षण घट सक्ता है और सप्त-पद जो मूलमें ग्रहण किया

है सो न्यूनाधिकसंख्याके हटानेके वास्ते अर्थात् ऐसा किसीको भ्रम न हो जावे जो सात पदार्थ तो कह दिये हैं और नहीं कहे हैं औरभी होवेंगे इस भ्रमके दूर करनेवास्ते मूलमें सप्त-पद दिया उसके देनेसे यह अर्थ निकला जो पदार्थ सातही हैं अधिक नहीं हैं और न कम हैं. पदार्थोंका सामान्यरूपसे निरूपण कर-दिया ॥ अब विशेषरूपसे करते हैंः—

तत्र द्रव्याणि । पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदि-ग्आत्ममनांसि नवैव ॥

"**तत्र सप्तपदार्थेषु मध्ये द्रव्याणि नवैव । तानि कानि । पृथिव्यप्तेजोवाय्वादीनि**" तत्रेति ॥ सप्त पदार्थोंमेंसे द्रव्य जो पदार्थ है सो नवही प्रकारका है. पृथिवी १, जल २, तेज ३, वायु ४, आकाश ५, काल ६, दिग् ७, आत्मा ८, मन ९, यह नवही द्रव्य हैं और मूलमें जो नवैव कहा है सो इसमें दो पद हैं एक तो नव-पद संख्याका वाचक है दूसरा एव-पद अव्यय है सो निषेध अर्थ और निश्चय अर्थका बोधक है इन दोनों पदोंसे यह अर्थ निकलता है द्रव्य नवही प्रकारका है अधिक या न्यून नहीं है यदि एवकारपद मूलमें न देते तब किसीको ऐसी भ्रान्ति हो जाती जो नव द्रव्य तो मूलमें कह दिये हैं परंतु औरभी द्रव्य होवेंगे जो नहीं कहे हैं सो एवकारपद देनेसे अब ऐसी भ्रान्ति किसीको नहीं हो सक्ती क्योंकि एवकार नवही द्रव्योंका निश्चय कराता है अधिकका निषेध करता है इसवास्ते मूलकारका कथन ठीक है ॥ ननु द्रव्यका लक्षण क्या है अर्थात् द्रव्य किसको कहते हैं ? । उ०— "**गुणवत्त्वं द्रव्यसामान्य-लक्षणम्**" गुणवाला होनाही द्रव्यका सामान्य लक्षण है अर्था-त् जिसमें गुण रहे उसीका नाम द्रव्य है सो नवही द्रव्य गुणों-

वाले हैं और हरएक द्रव्यके गुणोंको विभाग करकेभी कहा है अर्थात् जितने जितने गुण जिस जिस द्रव्यमें रहते हैं उनका संग्रहंवाक्यभी कहा है ॥ श्लोक—"वायोर्नवैकादश तेजसो गुणा जलक्षितिप्राणभृतां चतुर्दश । दिक्कालयोः पञ्च षडेव चाम्बरे महेश्वरेऽष्टौ मनसस्तथैव च॥" वायुमें नव गुण रहते हैं, और तेजमें ग्यारा गुण रहते हैं, जल तथा पृथिवी और प्राणभृत् जो जीवात्मा इनमेंसे हरएकमें चौदा चौदा गुण रहते हैं, दिग् तथा कालमेंसे हरएकमें पांच पांच गुण रहते हैं और अम्बर नाम आकाशका है उसमें छेः गुण रहते हैं और महेश्वर जो ईश्वर उसमें आठ गुण रहते हैं और मनमें भी आठ गुण रहते हैं । अब प्रत्येक द्रव्यके गुणोंको पृथक् पृथक् करके दिखाते हैं । स्पर्श १, संख्या २, परिमाण ३, पृथक्त्व ४, संयो-ग ५, विभाग ६, परत्व ७, अपरत्व ८, वेग ९, यह नव गुण वायुके हैं । रूप १, स्पर्श २, संख्या ३, परिमाण ४, पृथक्त्व ५, संयोग ६, विभाग ७, परत्व ८, अपरत्व ९, द्रवत्व १०, वेग ११, यह ग्यारा गुण तेजके हैं । रूप १, रस २, स्पर्श ३, संख्या ४, परिमाण ५, संयोग ६, विभाग ७, पृथक्त्व ८, परत्व ९, अपरत्व १०, गुरुत्व ११, द्रवत्व १२, स्नेह १३, वेग १४, यह चौदा गुण जलके हैं । रूप १, रस २, गन्ध ३, स्पर्श ४, संख्या ५, परिमाण ६, पृथक्त्व ७, संयोग ८, वि-भाग ९, परत्व १०, अपरत्व ११, गुरुत्व १२, द्रवत्व १३, वेग १४, यह चौदा गुण पृथिवीके हैं । संख्या १, परिमाण २, पृथक्त्व ३, संयोग ४, विभाग ५, बुद्धि ६, सुख ७, दुःख ८, इच्छा ९, द्वेष १०, प्रयत्न ११, धर्म १२, अधर्म १३, भावना १४, यह चौदा गुण जीवात्माके हैं । संख्या १,

परिमाण २, संयोग ३, विभाग ४, पृथक्त्व ५, यह पांच गुण दिग् और कालके हैं। संख्या १, परिमाण २, पृथक्त्व ३, संयोग ४, विभाग ५, शब्द ६, यह छेः गुण आकाशके हैं। संख्या १, परिमाण २, पृथक्त्व ३, संयोग ४, विभाग ५, बुद्धि ६, इच्छा ७, प्रयत्न ८, यह आठ गुण ईश्वरके हैं। संख्या १, परिमाण २, पृथक्त्व ३, संयोग ४, विभाग ५, परत्व ६, अपरत्व ७, वेग ८, यह आठ गुण मनके हैं। प्रत्येक द्रव्यके गुणोंका निरूपण कर दिया ॥ ननु गुणवत्त्व द्रव्यका लक्षण नहीं बनता, क्योंकि उत्पत्तिक्षणवाले घटरूप द्रव्यमें कोई-भी गुण नहीं रहता है, अर्थात् जिस क्षणमें घट उत्पन्न होता है उस क्षणमें निर्गुणही उत्पन्न होता है, द्रव्य तो वह है परंतु गुणसे रहित है तब गुणवत्त्वभी द्रव्यका लक्षण उसमें नहीं गया, किंतु अव्याप्तिरूप दोष लगा इसवास्ते गुणवत्त्व द्रव्यका लक्षण ठीक नहीं है ॥ उ० — वहां "द्रव्यत्वजातिमत्त्वं" ऐसा जाति-घटित लक्षण कर लेना अर्थात् जो द्रव्यत्वजातीवाला हो उसीका नाम द्रव्य है सो द्रव्यत्वजाति प्रथम क्षणोत्पन्न घटमेंभी रहती है इसवास्ते उसमेंभी लक्षण चला जाता है, अव्याप्ति दोष नहीं आता ॥ ननु लक्षण किसको कहते हैं और लक्ष्य किसको कहते हैं? ॥ उ० — "यदव्याप्त्यतिव्याप्त्यसंभवरूपदोषत्रयशून्यं तदेव लक्षणम्" अर्थात् जो तीनों दोषोंसे रहित हो उसका नाम लक्षण है, एक तो अव्याप्ति दोष है, दूसरा अतिव्याप्ति दोष है, तीसरा असंभव दोष है, इन तीनों दोषोंसे जो रहित हो उसीका नाम लक्षण है, सो क्रमसे तीनों दोषोंको दिखाते हैं। किसी पुरुषने दूसरे पुरुषसे पूछा गौका क्या लक्षण है? उसने कहा "गोः कपिलत्वं लक्षणम्" गौका कपिलत्व लक्षण

है अर्थात् जो कपिला हो उसीका नाम गौ है, सो यह लक्षण अव्याप्तिदोष करके ग्रस्त है ॥ "लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वमव्याप्तिः" जो लक्ष्यके एकदेशमें रहे और एकदेशमें न रहे वह अव्याप्ति दोष होता है, सो पूछनेवालेने तो गौमात्रका लक्षण पूछा और गोपदका लक्ष्य गौमात्र हुवा और कपिलत्व जो लक्षण है सो गौमात्रमें नहीं घटता क्योंकि कपिलत्व तो कपिलागौमेंही रहता है श्वेत रक्त गौमें नहीं रहता इसवास्ते कपिलत्व लक्षण अव्याप्तिरूप दोप करके ग्रस्त है यह दुष्ट लक्षण है अपने लक्ष्यकी सिद्धि नहीं कर सक्ता। और फिर जब पूछा तब "गोः शृङ्गित्वं लक्षणम्" गौका शृङ्गित्व लक्षण कहा अर्थात् जो शृङ्गोंवाली हो उसीका नाम गौ है सो यह लक्षणभी नहीं बनता, क्योंकि अतिव्याप्ति दोष करके ग्रस्त है ॥ "अलक्ष्यवृत्तित्वमतिव्याप्तिः" जो लक्षण अलक्ष्यमेंभी चला जावे उसका नाम अतिव्याप्ति है सो शृङ्गित्व लक्षण अलक्ष्य जो भैंसादिक उनमेंभी जाता है, क्योंकि भैंसादिकोंकोभी शृंग होते हैं, इसवास्ते यह लक्षणभी अतिव्याप्तिरूप दोष करके ग्रस्त होनेसे त्यागने योग्य है । और जो फिर पूछा तब "एकशफवत्त्वं" लक्षण कहा सो यह लक्षण असंभवरूप दोष करके ग्रस्त है, क्योंकि शफ नाम खुरका है अर्थात् जो एकखुरवाली हो उसका नाम गौ है, सो यह लक्षण गौमें घटता ही नहीं है, गौके तो दो खुर होते हैं किंतु लक्षणका अलक्ष्य जो अश्वादिक हैं उनका एक खुर होता है उनमें यह लक्षण चला गया इसवास्ते यहभी दुष्ट है त्यागने योग्य है।अब निर्दोष गौका लक्षण यह है "सास्नादिमत्त्वं गोर्लक्षणम्" जो सास्नादिकोंवाली हो उसका नाम गौ अर्थात् जिसके सास्ना और

शृङ्ग दोनों होवें उसीका नाम गौ है । यद्यपि भैंसादिकोंके शृङ्ग तो हैं परंतु सास्ना नहीं है इसवास्ते उनमें यह लक्षण नहीं जाता और एक पक्षी होता है उसके सास्ना तो है परंतु उसके शृङ्ग नहीं हैं इसलिये उसमेंभी नहीं जाता इसी कारणसे यह लक्षण ठीक है । और जिसका लक्षण किया जावे उसका नाम लक्ष्य है अर्थात् चिन्हों करके जो जाना जावे उसीका नाम लक्ष्य है, जैसे शृङ्गसास्नारूप चिन्हों करके गौ जानी जाती है इसवास्ते गौ लक्ष्य है । और जिन चिन्होंने उसको जनाया है वह चिन्ह उसके लक्षण हैं । सो सास्नादि गौके लक्षण हैं क्योंकि सास्नादिकों करकेही गौका यथार्थ ज्ञान होता है । लक्षणका स्वरूप कह दिया ॥ ननु दशम द्रव्य तमको क्यों नहीं कहा तिस तमका तो प्रत्यक्ष प्रमाण करकेही ग्रहण होता है यदि कहो उन्हीं नव द्रव्योंमें इसका अंतर्भाव है इसवास्ते इसको पृथक् नहीं कहा सो उन नव द्रव्योंमें इसका अंतर्भाव नहीं हो सक्ता क्योंकि गन्धके अभाववाला होनेसे पृथिवीमें इसका अंतर्भाव नहीं हो सक्ता पृथिवी गन्धवाली है, और तमको नीलरूपवाला होनेसे जल तेजमें इसका अंतर्भाव नहीं हो सक्ता क्योंकि जल तेजमें शुक्लरूपही रहता है, और वायु आकाशादिकोंको रूपसे रहित होनेसे उनमेंभी तमका अंतर्भाव नहीं हो सक्ता क्योंकि तम रूपवाला और क्रियावालाभी है इस रीतिसे नव द्रव्योंमें तो तमका अंतर्भाव बनताही नहीं इसवास्ते इसको पृथक् दशम द्रव्य मानो॥ उ०—तेजोऽभावका नामही तम है इसवास्ते तमको पृथक् द्रव्य नहीं माना है ॥ ननु तमके अभावको तेज मानो॥ उ०—तमका अभावरूप तेज नहीं हो सक्ता क्योंकि तेजमें उष्ण स्पर्श और भास्वरशुक्लरूपका प्रत्यक्ष करके

ग्रहण होता है, यदि तमके अभावको तेज मानेंगे तब अभावमें तो उष्णस्पर्शगुण और भास्वरशुक्लरूप रह नहीं सक्ते सो इनको तमको दूर करना पडेगा और इनका दूरीकरण किसी प्रकार-सेभी नहीं हो सक्ता इसवास्ते तमका अभाव तेज नहीं हो सक्ता किंतु तेजका अभावही तम हो सक्ता है ॥ ननु यदि तम तेजका अभावरूप है तब उसमें नीलरूपकी और चलनक्रियाकी क्यों प्रतीति होती है क्योंकि अभावमें तो रूप और क्रिया रहती नहीं॥ उ०—तममें नीलरूपकी जो प्रतीति है और चलनक्रिया-की जो प्रतीति है सो भ्रमरूप है क्योंकि जब पुरुष दीपक ले-कर चलता है तब चलता तो दीपकके साथ दीपकका प्रकाश है परंतु भ्रान्ति करके तम चलता प्रतीत होता है, जैसे नौकामें बैठे हुवे पुरुषको नदीके किनारेके वृक्ष चलते प्रतीत होते हैं चलती तो नौका है वृक्ष नहीं चलते हैं परंतु भ्रांति करके चलते प्रतीत होते हैं, तैसे दीपकके चलनरूप उपाधिकरके तम चलता प्रतीत होता है वास्तवमें तममें क्रिया और नीलरूप दोनों नहीं इसवास्ते तेजके अभावका नामही तम है यह सिद्ध भया । द्र-व्यका निरूपण कर दिया ॥ अब गुणका निरूपण करते हैं:—

रूपरसगंधस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगवि-भागपरत्वापरत्वगुरुत्वद्रवत्वस्नेहशब्दबुद्धिसुख-दुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माऽधर्मसंस्काराश्चतुर्विंश-तिगुणाः ॥

रूप १, रस २, गन्ध ३, स्पर्श ४, संख्या ५, परिमाण ६, पृथक्त्व ७, संयोग ८, विभाग ९, परत्व १०, अपरत्व ११, गुरुत्व १२, द्रवत्व १३, स्नेह १४, शब्द १५, बुद्धि १६, सुख १७, दुःख १८, इच्छा १९, द्वेष २०, प्रयत्न २१, धर्म

२२, अधर्म २३, संस्कार २४, तिन सात पदार्थोंमेंसे गुण जो पदार्थ है सो यह चौवीस प्रकारका है रूपसे लेकर संस्कारपर्यंत और यह चौवीसही गुण केवल द्रव्यमात्रमेंही रहते हैं और किसी पदार्थमें नहीं रहते हैं और " गुणे गुणानंगीकारात् " इस न्यायसे गुणमेंभी गुण नहीं रहते हैं और रूपादिक जो गुण हैं सो रूपादिकोंमें नहीं रहते हैं किंतु द्रव्यमेंही गुण रहते हैं और " द्रव्यकर्मावृत्तिजातिमत्त्वं गुणसामान्यलक्षणम् " अर्थात् द्रव्यकर्ममें अवृत्ति जो जाति याने द्रव्यकर्ममें न रहनेवाली जो जाति उस जातिवालेका नाम गुण है, सो द्रव्यत्वजाति द्रव्यमें अवृत्ति नहीं किंतु वृत्ति है और कर्मत्वजाति कर्ममें अवृत्ति नहीं किंतु वृत्ति इसवास्ते द्रव्यत्वकर्मत्वका ग्रहण नहीं हो सक्ता किंतु द्रव्यकर्ममें अवृति जाति गुणत्वजाति है सो गुणत्वजाति गुणमेंहीं रहती है उस गुणत्वजातिवाला गुणही हुवा, क्योंकि गुणत्वजाति चौवीसही गुणोंमें रहती है,यह गुणका सामान्यलक्षण कह दिया । विशेष लक्षणको आगे प्रत्येक गुणके निरूपण अवसरमें कहेंगे ॥

उत्क्षेपणापक्षेपणाकुंचनप्रसारणगमनानि पंच कर्माणि ॥

अब कर्मका निरूपण करते हैं:— कर्म पांच प्रकारका है १ उत्क्षेपण है, २ अपक्षेपण है, ३ आकुञ्चन है, ४ प्रसारण है,५ गमन है। सो इनके लक्षण आगे लिखेंगे और कोई भ्रमण, रेचन, स्पन्दन, ऊर्ध्वज्वलन, तिर्यक्गमन,यह पांच कर्म और मानता है सो उसका मानना ठीक नहीं है किंतु उत्क्षेपणादिक कर्म जो मूलकारने कहे हैं उन्हींके अन्तर्भूत इनकोभी जान लेना अर्थात् गमनसेही भ्रमणादिकोंका लाभ हो जाता है पृथक् माननेकी जरूरत नहीं है और " कर्मत्वजातिमत्त्वं कर्मसामा-

न्यलक्षणम् " कर्मत्वजातिवालेका नामही कर्म है, यह कर्मका सामान्य लक्षण है सब कर्मोंमें जानेवाला, और विशेष लक्षण जो है हर एक कर्मका भिन्न भिन्न लक्षण सो ग्रन्थकार आपही आगे कहेंगे, और जैसे गुण द्रव्यमेंही रहता है तैसे कर्मभी द्रव्यमें रहता है और किसी पदार्थमें कर्म नहीं रहता ऐसा नेम है ॥

परमपरं चेति द्विविधं सामान्यम् ॥

अब सामान्यको दिखाते हैं:—सामान्य दो प्रकारका है,एक तो परसामान्य है, दूसरा अपर सामान्य है सो सत्ताका नाम परसामान्य और द्रव्यत्वादिजातियोंका नाम अपर सामान्य है जो अधिक देशमें रहे उसका नाम पर है और अल्प देशमें रहे वह अपर है सो सत्ता सब द्रव्यत्वादिजातियोंकी अपेक्षा करके अधिक देश जो द्रव्य,गुण,कर्म तीनोंमें रहती है इसवास्ते वह पर कहाती है और द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व सत्ताकी अपेक्षा करके अल्पदेश जो द्रव्य,गुण,कर्म उनमेंही रहती है इस वास्ते यह अपर कहाती है अर्थात् द्रव्यत्व द्रव्यमें ही रहती है गुणकर्ममें नहीं रहती और गुणत्व गुणमेंही, कर्मत्व कर्ममेंही रहती है अन्य-में नहीं इसीसे यह सत्तासे अपर हैं और सत्ता सब जातियोंकी अपेक्षा करके पर है इसवास्ते सत्ता परही कहाती है अपर नहीं कहाती और द्रव्यत्वादिक जातियोंमें पर अपर दोनों प्रकारका व्यवहार होता है इसवास्ते उनमें परत्व अपरत्व रहता है अर्थात् पृथिवीत्व जलत्वादि जातियोंकी अपेक्षा करके सत्तामें परव्यव-हार होता है क्योंकि पृथिवीत्व जलत्वसे द्रव्यत्व अधिक देश जो नवद्रव्य उनमें रहती है और पृथिवीत्व जलत्वादिक केवल पृथिवी जलादिकोंमेंही रहते हैं इसवास्ते द्रव्यत्व पृथिवीत्वादिकों-से पर है और सत्तासे अपर है इसी प्रकार पृथिवीत्व घटत्वादि-

कोंकी अपेक्षासे पर है और घटत्वादिक पृथिवीत्वकी अपेक्षासे अपर हैं सर्वत्र इसी रीतिसे परअपरव्यवहार जान लेना परंतु सामान्य जो है सो द्रव्य,गुण, कर्म इन तीनही पदार्थोंमें रहता है सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव इन चार पदार्थोंमें सामान्य जो जाति है सो नहीं रहती॥ ननु सामान्यका लक्षण क्या है ? ॥

उ०—"नित्यत्वे सत्यनेकसमवेतत्वं सामान्यलक्षणम्" जो नित्य हो और अनेकोंमें समवेत हो अर्थात् समवायसम्बन्ध करके रहे उसका नाम सामान्य है सो द्रव्यत्वादिक जितनी जातियें हैं वह नित्यभी हैं और अनेक जो द्रव्यादिक उनमें समवायसम्बन्ध करके रहतीभी हैं, अब लक्षणकी कृत्यको दिखाते हैं । यदि नित्यत्वही सामान्यका लक्षण करते तब गगनादिकोंमें अतिव्याप्ति होती क्योंकि नित्य तो गगनादिकभी हैं इसवास्ते अनेकसमवेत कहा सो गगनादिक नित्य तो हैं परंतु अनेकोंमें समवेत नहीं है इसलिये उनमें अतिव्याप्ति नहीं होती, और जो अनेकसमवेतत्व इतनाही लक्षण करते तब संयोगादिकोंमें लक्षण चला जाता क्योंकि अनेकसमवेत तो संयोगादिकभी हैं इसवास्ते नित्यत्वभी कहा सो संयोगादिक अनेकसमवेत तो हैं परंतु नित्य नहीं हैं इसवास्ते उनमें अब लक्षण नहीं जाता, और जो अनेकसमवेतत्वको छोड करके अनेकवृत्तित्व ऐसा लक्षण करते तब अत्यंताभावमें लक्षण चला जाता क्योंकि अंत्यताभावभी स्वरूपसम्बन्ध करके अनेकोंमें वृत्ति है इसवास्ते वृत्तित्वको छोड करके अनेकसमवेत कहा सो अत्यंताभाव अनेकोंमें समवेत नहीं है अर्थात् समवायसम्बन्ध करके नहीं रहता इसवास्ते अत्यंताभावमेंभी अतिव्याप्ति नहीं आती यह सामान्यका लक्षण निर्दोष है । सामान्यका निरूपण कर दिया॥

नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्त्वनन्ता एव ॥

नित्यद्रव्योंमें रहनेवाले जो विशेष पदार्थ हैं वे अनंत हैं अर्थात् नित्यद्रव्य जो परमाणु आदिक हैं वह अनंत हैं इसवास्ते उनके भेदक याने परस्पर भेद करनेवाले विशेषभी अनंत हैं और जितने घटादिक हैं उनके अवयव जो कपालादिक हैं उनके भेदसे घटादिकोंका परस्पर भेद सिद्ध होता है परंतु परमाणु आदिक जो नित्यद्रव्य हैं वह तो निरवयव हैं उनका परस्पर भेद कैसे सिद्ध होवे इसवास्ते उन नित्यद्रव्योंका परस्पर भेद करनेवाले विशेष माने हैं यदि विशेषका भेदकभी कोई और विशेष माना जावेगा तब उसका भेद कोई और मानना पडेगा तब अनवस्था-दोष आवेगा इसवास्ते विशेषका भेदक दूसरा कोई नहीं माना है किंतु विशेषकोही स्वतोव्यावर्तकत्व माना है अर्थात् अपना आपही भेदक माना है और जैसे परमाणु आदिक नित्य हैं तैसे उनके भेदक विशेषभी नित्य हैं ॥ ननु विशेषका लक्षण क्या है ? ॥ उ०—" **निःसामान्यत्वे सति सामान्यभिन्नत्वे सति समवेतत्वं विशेषलक्षणम्** " जो सामान्यसे शून्य हो अर्थात् जिसमें जाति न रहे और जो सामान्यसे भिन्न हो याने आप जातिरूप न हो किंतु जातिसे भिन्न हो और समवेत हो याने समवायसम्बन्ध करके द्रव्यमें रहे उसीका नाम विशेष है, सो यह लक्षण विशेषमेंही घटता है क्योंकि विशेष जातिसे रहितभी हैं और जातिसे भिन्नभी हैं और नित्यद्रव्य जो परमाणु आदिक उनमें समवायसम्बन्ध करके रहतेभी हैं और जो द्रव्य, गुण,कर्म हैं सो सामान्यसे रहित नहीं हैं और सामान्य जो है सो सामान्यसे भिन्न नहीं है और समवाय,अभाव जो हैं सो किसीमें समवायसम्बन्ध करके रहते नहीं हैं इसवास्ते और किसीभी

पदार्थमें यह लक्षण नहीं जाता इसीसे यह लक्षण निर्दोष है। विशेषका निरूपण कर दिया ॥

समवायस्त्वेक एव ॥

समवाय जो है सो एकही है। "नित्यसम्बन्धत्वं समवायलक्षणम्" जो नित्य सम्बन्ध हो उसीका नाम समवाय है और समवायसम्बन्ध जो है सो अवयव और अवयविका, जाति और व्यक्ति, गुण और गुणिका, क्रिया और क्रियावालेका, विशेष और नित्यद्रव्योंकाही होता है अर्थात् जाति व्यक्ति आदिकोंका जो परस्पर सम्बन्ध है उसीका नाम समवायसम्बन्ध है। याने अवयवि जो घट है सो अपने अवयव कपालोंमें समवायसम्बन्ध करकेही रहता है और गुण जो रूप है सो गुणी (द्रव्य) में याने घटपटादिकोंमें समवाय करकेही रहता है इसी प्रकार जाति आदिकोंकोभी जान लेना ॥ ननु समवायकी सिद्धिमें क्या प्रमाण है? ॥ उ०—अनुमान प्रमाण है सो दिखाते हैं। "गुणक्रियादिविशिष्टबुद्धिर्विशेषणविशेष्यसम्बन्धविषया विशिष्टबुद्धित्वाद्दण्डी पुरुष इति विशिष्टबुद्धिवदित्यनुमानम्" गुण और क्रियादिकों करके युक्त जो बुद्धि है यह पक्ष हुवा, सो विशेषण और विशेष्यके सम्बन्धको विषय करती है यह साध्य हुवा, "कस्मात् विशिष्टबुद्धित्वात्" विशिष्टबुद्धि होनेसे यह हेतु हुवा,जैसे"दण्डी पुरुषः"यह जो विशिष्ट बुद्धि है सो दण्ड जो विशेषण और पुरुष जो विशेष्य तिन दोनोंके सम्बन्धको विषय करती है अर्थात् दण्डपुरुषका जो संयोगसम्बन्ध उसको विषय करती है सो इसमें विशिष्टबुद्धित्व हेतुभी है और विशेषण जो दण्ड और विशेष्य जो पुरुष उनके सम्बन्धविषयकभी है, इसवास्ते दृष्टा-

न्तमें हेतु साध्य दोनों हैं अब पक्षमें घटावो "रूपवान् वा क्रियावान् घटः" अर्थात् रूपवाला और क्रियावाला घट है यह जो गुणक्रियाविशिष्ट बुद्धि है इसमेंभी विशिष्टबुद्धि हेतु है सो हेतुके बलसे विशेषणविशेष्यका सम्बन्धरूप साध्यभी मानो अर्थात् विशेषण जो रूप और क्रिया और विशेष्य जो घट उनका कोई सम्बन्धभी मानो सो घटरूपका संयोगसम्बन्ध तो बनता नहीं क्योंकि द्रव्योंकाही परस्पर संयोगसम्बन्ध होता है द्रव्यगुणका द्रव्यक्रियादिका संयोग नहीं होता इसवास्ते द्रव्यगुणादिकोंका समवायही मानना होगा इस अनुमान करके समवायकी सिद्धि होती है। समवायका निरूपण कर दिया अब अभावका निरूपण करते हैं:—

अभावश्चतुर्विधः । प्रागभावः प्रध्वंसाभावोत्यंताभावोन्योन्याभावश्चेति ॥

अभाव जो पदार्थ है सो चार प्रकारका है । एक तो प्रागभाव है, दूसरा प्रध्वंसाभाव है, तीसरा अत्यन्ताभाव है, चौथा अन्योन्याभाव है । "भावभिन्नत्वमभावसामान्यलक्षणम्" अर्थात् जो भावपदार्थसे भिन्न हो उसीका नाम अभाव है यह अभावका सामान्यलक्षण है अभावमात्रमें रहनेवाला, और प्रत्येक अभावके विशेषलक्षणको आगे आपही ग्रन्थकार लिखेंगे इसवास्ते यहां पर नहीं लिखते हैं "घटो ध्वस्तः" घटनाश हो गया इस प्रतीतिका विषय प्रध्वंसाभाव है, "घटो भविष्यति" अर्थात् इन कपालोंमें घट होगा इस प्रतीतिका विषय प्रागभाव है, "घटो नास्ति" इस जगामें घट नहीं है इस प्रतीतिका विषय अत्यन्ताभाव है, "घटो न पटः" घट जो है सो पट नहीं है इस प्रतीतिका विषय अन्योन्याभाव है ॥ प्रभा-

कर मीमांसककी शंका ॥ ननु अभाव अधिकरणस्वरूपही है अधिकरणसे भिन्न अभावको माननेकी कुछ आवश्यकता नहीं है ॥ उ०— अधिकरण नाम आधारका है जिसमें जो रहे वह उसका अधिकरण होता है याने आधार होता है और रहनेवाला आधेय होता है जैसे भूतलमें घट रहता है सो भूतल घटका आधार है घट आधेय है सो घट आधेय अधिकरणसे जैसे भिन्न है तैसे जिस भूतलमें घट नहीं है वह भूतल घटके अभावका आधार है घटाभाव आधेय है सो यदि अभावको अधिकरणसे भिन्न नहीं मानोगे तब आधाराधेयभावभी नहीं बनेगा, क्योंकि ऐसा नियम है जिस इन्द्रिय करके जिसका ग्रहण होता है उसी इन्द्रिय करके उसके अभावकाभी ग्रहण होता है अर्थात् जिस चक्षुइन्द्रिय करके रूपका प्रत्यक्ष होता है उसी चक्षुइन्द्रिय करके रूपके अभावकाभी प्रत्यक्ष होता है इसीप्रकार घ्राणइन्द्रिय करके गन्धका प्रत्यक्ष होता उसी घ्राणइन्द्रिय करके गन्धके अभावकाभी प्रत्यक्ष होता है, यदि तुम रूपाभाव और गन्धाभावको अधिकरणरूप मानोगे तब वायुमें रूपका अभाव और गन्धका अभाव रहता है उस रूपाभाव और गन्धाभावका प्रत्यक्ष चक्षुइन्द्रिय करके और घ्राणकरके होता है सो अब नहीं होगा क्योंकि चक्षुकरके और घ्राण करके तो वायुका प्रत्यक्ष होता नहीं क्योंकि चक्षु करके रूपका प्रत्यक्ष होता है और घ्राण करके गन्धका प्रत्यक्ष होता है सो दोनों तो वायुमें है नहीं और उनके अभावको तुमने वायुरूप माना और वायुका प्रत्यक्ष चक्षु करके और घ्राण करके होता नहीं इसवास्ते रूपाभाव और गन्धाभावका प्रत्यक्ष किसी प्रकारसेभी तुमारे मतमें नहीं होगा और अभावका प्रत्यक्ष सबको

होता है इसवास्ते अधिकरणस्वरूप नहीं है किंतु अधिकरणसे भिन्न है अभावका निरूपण कर दिया, और क्रमसे सातों पादर्थों का सामान्य रूपसे निरूपण करदिया । अब उनका विशेष रूपसे निरूपण करते हैं, नवद्रव्योंमेंसे प्रथम पृथिवीका निरूपण करते हैंः—

तत्र गंधवती पृथिवी । सा द्विविधा । नित्यानित्या च । नित्या परमाणुरूपा । अनित्या कार्यरूपा ॥

तत्रेति ॥ " नवद्रव्येषु मध्ये गन्धवत्त्वं पृथिव्याः लक्षणम् " तत्र याने नव द्रव्योंमेंसे गन्धवत्त्व पृथिवीका लक्षण है अर्थात् नवद्रव्योंमेंसे जो गन्धवाला द्रव्य हो उसीका नाम पृथिवी है क्योंकि पृथिवीको छोडकर जलादिकोंमें गन्ध नहीं रहती है इसवास्ते यह लक्षण निर्दोष है ॥ ननु गन्धवत्त्व पृथिवीका लक्षण नहीं बनता क्योंकि वायुमेंभी गन्धकी प्रतीति है क्योंकि लोक कहते हैं इस कालमें सुगन्धिवाली वायू चलती है, और जलमेंभी गन्धकी प्रतीति होती है यह जल सुगन्धिवाला है यह जल दुर्गन्धिवाला है इस प्रतीतिसे ॥ उ०—वायुमें जो गन्धकी प्रतीति होती है सो वायुकी अपनी गन्ध नहीं है किंतु पृथिवीके जो सूक्ष्म अवयव वायुमें मिले हैं उनकीही गन्ध वायुमें प्रतीत होती है, जब कि वायु चलती है तब रस्तेमें जो फुलवाडी पड जाती है उसमें जो फूल हैं उनके साथ जब वायुका सम्बन्ध होता है तब उन फूलोंके जो सूक्ष्म रज हैं याने त्रसरेणु हैं उनको तोडकर वायु उडा लाती है सो उन्हींकी गन्ध वायुमें प्रतीत होती है वायुमें अपनी गन्ध नहीं है जैसे सरदीके दिनोंमें वायुमें जलके सम्बन्धसे शीतता प्रतीत होती है और गरमीके दिनोंमें अतितीक्ष्ण धूपके सम्बन्धसे वायुमें उष्णता प्रतीत होती

है स्वतः वायुमें शीतता और उष्णता नहीं है किंतु वायुका अपना अनुष्णाशीत स्पर्श है तैसेही स्वतः वायुमें गन्धभी नहीं है किंतु पृथिवीके सम्बन्ध करकेही वायुमें गन्ध प्रतीत होती है तैसे जलमेंभी पृथिवीकेही संबन्धसे गन्धकी प्रतीति है जहांपर कूपकी या तालावकी पृथिवी खराब होती है वहां जलमें दुर्गन्धी आती है और जिस जलमें सुगन्धिवाला द्रव्य छोडा जाता है उसमें पृथिवीके सम्बन्धसे सुगन्धी आती है इसी प्रकार अग्निरूप तेजमेंभी सुगन्धीवाले द्रव्यके सम्बन्धसे सुगन्धी आती है स्वतः अग्निरूप तेजमेंभी गन्धी नहीं है इसवास्ते पृथिवीके लक्षणमें कोईभी दोष नहीं आता ॥ सा द्विविधेति ॥ सो पृथिवी दो प्रकारकी है । नित्येति ॥ एक तो नित्य पृथिवी है, दूसरी अनित्य पृथिवी है, दोनोंमेंसे जो परमाणुरूप पृथिवी है अर्थात् जो पृथिवीके परमाणु हैं वह नित्य हैं और जो कार्यरूप पृथिवी है सो अनित्य है, अर्थात् स्थूल जो पृथिवी है वह अनित्य है॥ ननु परमाणु किसको कहते हैं ?॥ उ०—झरोखेके रस्तेसे जो मकानके भीतर सूर्यकी प्रभा आती है उस प्रभामें जो सूक्ष्म धूलीसी उडती प्रतीत होती है उसमें जो बारीक बारीक जरे जरे प्रतीत होते हैं उनका नाम त्रसरेणु है उस त्रसरेणुके तीसरे भागका नाम द्व्यणुक है और त्रसरेणुके छटे भागका नाम परमाणु है उस परमाणुका और द्व्यणुकका प्रत्यक्ष किसीको नहीं होता किंतु त्र्यणुकका प्रत्यक्ष होता है ईश्वर और योगीको परमाणुकाभी प्रत्यक्ष होता है महाप्रलयमें जितनी स्थूल पृथिवी है सो द्व्यणुकपर्यंत नाश हो जाती है परंतु द्व्यणुकके अवयव जो परमाणु हैं उनका नाश कदापि नहीं होता है वह नित्य है यदि परमाणुवोंकाभी नाश मानोगे तब विनाही कारणके कार्य होने ल-

मेगा सो विना कारणके कार्य कदापि नहीं होता इसवास्ते परमाणु नित्य हैं, जब कि पुनः जीवोंके कर्म फल देनेको उदय होते हैं तब ईश्वरकी इच्छासे दो दो परमाणुवोंका संयोग होता है अर्थात् ईश्वरकी इच्छासे प्रथम परमाणुवोंमें क्रिया होती है तब दो दो परमाणुवोंका संयोग होकर द्व्यणुककी उत्पत्ति होती है फिर तीन द्व्यणुक मिलकर त्र्यणुक बनता है फिर चतुरणुक इसी प्रकार महान् पृथिवी उत्पन्न हो जाती है फिर जीवोंके कर्म फल देनेको जब २ समाप्त हो जाते हैं तब ईश्वरकी इच्छा करके प्रथम परमाणुवोंमें क्रिया होकर प्रथम परमाणुवोंके संयोगका नाश होकर दो दो परमाणुवोंका विभाग होता है पश्चात् द्व्यणुकका नाश होता है पुनः त्र्यणुकका नाश होकर फिर इसी प्रकार स्थूलपृथिवीपर्यंत सब नाश होकर पृथिवीके परमाणुमात्रही रह जाते हैं उनका नाश नहीं होता वह नित्य हैं ॥ ननु परमाणुवोंकी सिद्धिमें क्या प्रमाण है ?॥ उ०—परमाणुवोंकी सिद्धीमें अनुमान प्रमाण है सो दिखाते हैं । "त्रसरेणुः सावयवः चाक्षुषद्रव्यत्वात् घटवत्" त्रसरेणु जो हैं सो सावयव हैं अर्थात् अवयवोंवाले हैं, चक्षुइन्द्रिय करके ग्राह्य द्रव्य होनेसे,जैसे घट जो है सो चक्षुइन्द्रिय करके ग्राह्य द्रव्य है सो अवयवोंवालाभी है, तैसे त्रसरेणुभी चक्षुइन्द्रिय करके ग्राह्य है इसकोभी सावयव मानो अर्थात् त्रसरेणुभी अवयवोंवाला है इस अनुमान करके त्रसरेणुके अवयव द्व्यणुक सिद्ध हुए । अब द्व्यणुकके अवयवोंको अनुमान करके सिद्ध करते हैं । "त्रसरेणोरवयवाः सावयवाः महदारम्भकत्वात् कपालवत्" त्रसरेणुके जो अवयव हैं सोभी सावयव हैं अर्थात् त्रसरेणुके अवयव जो द्व्यणुक हैं वहभी अवयवोंवाले हैं याने उनकेभी कोई अवयव हैं

महत्परिमाणके आरम्भक होनेसे कपालोंकी नाईं, जैसे कपाल जो हैं सो अपनेसे महत्परिमाणवाला जो घट है उसके आरम्भक हैं याने घटको बनाते हैं इसवास्ते उनमें महदारम्भकत्व हेतु है और सावयवभी हैं अर्थात् अपनेसे छोटियें जो कपालियें उन अवयवोंवालेभी हैं, तैसे त्रसरेणुके जो अवयव द्व्यणुक हैं उनमेंभी महदारम्भकत्व हेतु है याने अपनेसे बडे त्रसरेणुको उत्पन्न करते हैं इसवास्ते वहभी सावयव हैं याने द्व्यणुकभी अवयववाले हैं सो उनके अवयवोंका नामही परमाणु है वह परमाणु निरवयव हैं, नित्य हैं, वही अवधि हैं यदि परमाणुवोंकेभी अवयव मानोगे तब उनके फिर मानने पडेंगे तब अनवस्था दोष आवेगा याने कहींभी विश्रांती नहीं होगी इसवास्ते उनको नित्य मानो इस अनुमान करके परमाणुवोंकी सिद्धि हुई ॥

सा पुनस्त्रिविधा । शरीरेंद्रियविषयभेदात् । शरीरमस्मदादीनाम् । इंद्रियं गंधग्राहकं घ्राणं नासाग्रवर्ति । विषयो मृत्पाषाणादिः ॥

सेति ॥ सो कार्यरूप पृथिवी पुनः तीन प्रकारकी है शरीरभेदसे, इन्द्रियभेदसे, विषयभेदसे । **शरीरमिति** ॥ अस्मदादिकोंके जो शरीर हैं सो सब पृथिवीके शरीर हैं सो शरीर दो प्रकारके हैं एक तो योनिज हैं जो योनिसे उत्पन्न होते हैं सो चार प्रकारके हैं जरायुज १, अण्डज २, स्वेदज ३, उद्भिज ४, सो चारोंमेंसे जरायुज याने जेरसे उत्पन्न होनेवाले शरीर मनुष्य पशु आदिकोंके हैं और अण्डज याने अण्डेसे उत्पन्न होनेवाले शरीर पक्षिसर्पादिकोंके हैं और स्वेदज याने पसीनेसे उत्पन्न होनेवाले शरीर मच्छरादिकोंके हैं और उद्भिज याने पृथिवीको फाडकर निकलनेवाले शरीर वृक्षादिकोंके हैं और अयोनिज

शरीर धृष्टद्युम्नादिकोंके हुवे हैं। इन्द्रियमिति ॥ जो गन्धको ग्रहण करनेवाला घ्राणइन्द्रिय है सो पृथिवीका इन्द्रिय है और वह घ्राणइन्द्रिय नासिकाके अग्रभागमें रहता है। विषयेति ॥ और जितना कि मृत्तिकापाषाणादिक हैं वह सब पृथिवीका विषय है। पृथिवीका निरूपण कर दिया ॥ अब जलका निरूपण करते हैं:—

शीतस्पर्शवत्य आपः। ताश्च द्विविधाः। नित्या अनित्याश्च। नित्याः परमाणुरूपाः। अनित्याः कार्यरूपाः ॥

शीतेति ॥ शीतस्पर्शवाले जो हों उनका नाम आप है अर्थात् जिसमें शीतस्पर्श रहे याने ठंडा स्पर्श होवे उसीका नाम जल है सो जो आप हैं सो दो प्रकारके हैं याने जल दो प्रकारका है एक तो नित्य जल है, दूसरा अनित्य जल है। नित्या इति ॥ नित्यजल परमाणुरूप है अर्थात् जो जलके परमाणु हैं वह नित्य हैं और जो कार्यरूप स्थूलजल है जिससे कि सब व्यवहार सिद्ध होता है वह कार्यरूप जल अनित्य है ॥

पुनस्त्रिविधाः। शरीरेंद्रियविषयभेदात्। शरीरं वरुणलोके। इंद्रियं रसग्राहकं रसनं जिह्वाग्रवर्ति। विषयः सरित्समुद्रादिः ॥

पुनरिति ॥ पुनः कार्यरूप वह जल तीन प्रकारका है। शरीरेति ॥ शरीरभेदसे, इन्द्रियभेदसे, विषयभेदसे। शरीरमिति ॥ जलीय शरीर वरुणलोकमें है। इन्द्रियमिति ॥ रसको ग्रहण करनेवाला जो रसनाइन्द्रिय है सोई जलका इन्द्रिय है और वह जिव्हाके अग्रभागमें रहता है। विषयेति ॥ और नदियें तथा समुद्रादिक जलके विषय हैं ॥

उष्णस्पर्शवत्तेजः । तच्च द्विविधम् । नित्यमनित्यं च । नित्यं परमाणुरूपम् । अनित्यं कार्यरूपम् ॥

उष्णेति ॥ जो उष्णस्पर्शवाला होवे उसका नाम तेज है । तच्चेति ॥ सो तेज दो प्रकारका है । नित्यमिति ॥ एक तो नित्य तेज है, दूसरा अनित्य तेज है । नित्यमिति ॥ नित्य तेज परमाणुरूप है अर्थात् तेजके जो परमाणु हैं वह नित्य हैं अनित्यमिति ॥ जो कार्यरूप प्रसिद्ध तेज है वह अनित्य है ॥

पुनस्त्रिविधम् । शरीरेंद्रियविषयभेदात् । शरीरमादित्यलोके । इंद्रियं रूपग्राहकं चक्षुः कृष्णताराग्रवर्ति ॥

पुनरिति ॥ पुनः वह तेज याने कार्यरूप तेज तीन प्रकारका है । शरीरेति ॥ शरीरभेदसे, इन्द्रियभेदसे, विषयभेदसे । शरीरमिति ॥ तेजके जो शरीर हैं सो आदित्यलोकमें हैं । इन्द्रियमिति ॥ रूपको ग्रहण करनेवाला चक्षुइन्द्रिय जो है सो तेजका इंद्रिय है सो चक्षुके गोलकमें जो कृष्णतारा है अर्थात् कालीसी बिन्दु है उसके अग्रभागमें रहता है वही चक्षुइन्द्रियके रहनेका स्थान है ॥

विषयश्चतुर्विधः । भौमदिव्यौदर्याकरजभेदात् । भौमं वह्न्यादिकम्, अबिंधनं दिव्यं विद्युदादि, भुक्तान्नपरिणामहेतुरौदर्यम्, आकरजं सुवर्णादि ॥

विषय इति ॥ तेजका विषय चार प्रकारका है । भौमेति॥ भौमभेदसे, दिव्यभेदसे, औदर्यभेदसे, आकरजभेदसे । भौममिति ॥ वह्न्यादिक तेजका नाम भौमतेज है, जलही है इन्धन याने लकडी स्थानापन्न जिस तेजके उसका नाम दिव्य तेज है जो बादलमें बिजुलीआदिक तेज हैं, भोजन किये जो अन्नादिक हैं उनके पचानेका हेतु जो उदरमें जाठरानल अग्नि है उसका

नाम औदर्यतेज है, और आकर नाम खानका है उससे उत्पन्न होनेवाले जो सुवर्णादिक हैं उनका नाम आकरज तेज है ॥ अब वायुका निरूपण करते हैं:—

रूपरहितस्पर्शवान्वायुः । स द्विविधः । नित्योऽनित्यश्च । नित्यः परमाणुरूपः । अनित्यः कार्यरूपः ॥

रूपरहितेति॥ जो रूपसे रहित हो और स्पर्शवाली हो उसका नाम वायु है । **सेति ॥** सो वायु दो प्रकारकी है एक तो नित्य वायु है, दूसरी अनित्य है । **नित्येति ॥** जो परमाणुरूप वायु है सो नित्य है, जो कार्यरूप वायु है सो अनित्य है ॥

पुनस्त्रिविधः । शरीरेंद्रियविषयभेदात् । शरीरं वायुलोके । इंद्रियं स्पर्शग्राहकं त्वक् सर्वशरीरवर्ति । विषयो वृक्षादिकंपनहेतुः । शरीरान्तः संचारी वायुः प्राणः । स एकोप्युपाधिभेदात् प्राणापानादिसंज्ञां लभते ॥

पुनरिति ॥ सो कार्यरूप वायु पुनः तीन प्रकारकी है । **शरीरेति ॥** शरीरभेदसे, इन्द्रियभेदसे, विषयभेदसे । **शरीरमिति ॥** वायुके शरीर वायुलोकमेंही रहते हैं और जो स्पर्शका ग्राहक याने स्पर्शको ग्रहण करनेवाला त्वगूइन्द्रिय है सो वायुका इन्द्रिय है सो सब शरीरमें रहता है इसीवास्ते सब शरीरमें ही स्पर्शका ज्ञान होता है । **विषयेति ॥** और जो वृक्षादिकोंके कंपानेवाली महावायु है वही वायुका विषय है । **शरीरेति ॥** जो शरीरके भीतर घूमनेवाली वायु है उसका नाम प्राण है यद्यपि वह प्राण एकही है तथापि हृदयादि उपाधिभेदसे प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान नामवाला होकर पांच प्रकार-

का हो जाता है अर्थात् प्राण हृदयदेशमें रहता है, और गुदादेशमें अपान रहता है, और व्यान सारे शरीरमें रहता है, और नाभिदेशमें समान रहता है, और कंठदेशमें उदान रहता है, देशके भेदसे प्राणोंकाभी भेद हो गया है ॥

शब्दगुणकमाकाशम् । तच्चैकं विभु नित्यं च ॥

शब्देति॥ शब्द है गुण जिसका उसका नाम आकाश है । **तच्चेति ॥** सो आकाश एक है और व्यापक है और नित्यभी है॥ ननु विभु किसको कहते हैं? ॥ उ०—"**सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगित्वं विभुत्वम्**" जितने कि मूर्तिमान द्रव्य हैं उन सबके साथ संयोग होनेका नामही विभु है सो जितने विभु द्रव्य हैं आकाश, काल, दिग्, आत्मा इन सबका सर्व मूर्तिवाले द्रव्योंके साथ संयोग है इसवास्ते यह सब विभु हैं और पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन यह पांच द्रव्य मूर्तिमान् हैं और आकाश, काल, दिग्, आत्मा, यह चार अमूर्तिवाले द्रव्य हैं और पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पांचोंकी भूतसंज्ञाभी है याने इनको पांच भूतभी कहते हैं ॥

अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः । स चैको विभुर्नित्यश्च ॥

अतीतेति ॥ अतीत, वर्तमान, भविष्यत्, इस व्यवहारका जो हेतु होवे याने कारण होवे उसका नाम काल है सो व्यवहार इस प्रकार होता है । "**घटोऽभूत्**" घट होता भया, यह प्रतीति याने ज्ञान अतीत कालमें घटको विषय करता है । "**घटोऽस्ति**" घट है, यह ज्ञान वर्तमान कालमें घटको विषय करता है । "**घटो भविष्यति**" घट होगा, यह ज्ञान आगे होनेवाले कालमें घटको विषय करता है । **स चेति ॥** सो काल एक

है और व्यापक है और नित्यभी है । और कारण दो प्रकारका होता है, एक तो साधारणकारण होता है, दूसरा असाधारणकारण होता है, सो दोनोंमेंसे जो कार्यमात्रके प्रति कारण होवे सो साधारणकारण कहाता है, और जो किसी एकके प्रति कारण होवे सो असाधारणकारण कहाता है, और जितने जन्य पदार्थ हैं याने उत्पत्तिवाले पदार्थ हैं उनके प्रति तो काल साधारणकारण है क्योंकि कालिकसम्बन्ध करके सब कालमेंही रहते हैं और तन्तु आदिक असाधारणकारण हैं क्योंकि पटकेही प्रति यह कारण हैं घटके प्रति नहीं हैं ॥

प्राच्यादिव्यवहारहेतुर्दिक् । सा चैका नित्या विभ्वी च॥

प्राच्येति ॥ मूलमें जो प्राच्यादि कहा है सो आदिपद करके औरोंकाभी ग्रहण कर लेना याने प्राची, अवाची, प्रतीची, उदीची, अर्थात् पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर इस व्यवहारका जो कारण होवे उसका नाम दिग् है । **सा चेति ॥** सो दिक् एक है और नित्यभी है और व्यापकभी है परंतु उपाधिके भेद करके वह एकही दिक् चार प्रकारकी हो जाती है, सो दिखाते हैं, जिस पुरुषको उदयाचल पर्वतके समीप जो दिक् है उसका नाम प्राची है याने पूर्व है और जहांसे प्रथम सूर्य उदय होता है उस पर्वतका नाम उदयाचल है । दृष्टांत, जैसे काशीसें बंगालवालोंको काशीकी अपेक्षासे उदयाचल समीप है सो उनको पूर्व है, एवं जिस पुरुषको उदयगिरीसे व्यवधानवाली जो दिक् है सो उसको प्रतीची है, याने पश्चिम है सो काशीवाले पुरुषको हरिद्वार पश्चिम है क्योंकि, काशीकी अपेक्षा करके उदयगिरिसे हरिद्वार दूर है, इसी प्रकार जिस पुरुषको सुमेरुके नजदीक जो दिक् है सो उसको उत्तर है सो काशीवाले पुरुषको

रामेश्वरकी अपेक्षा करके सुमेरु नजदीक है इसी वास्ते वह दिक् उसको उत्तर है, और सुमेरुसे दूर जो दिक् है वह उसको दक्षिण है सो काशीवाले पुरुषको रामेश्वर दक्षिण है क्योंकि, काशीकी अपेक्षा करके रामेश्वर सुमेरुसे दूर है। दिक्का निरूपण कर दिया ॥

ज्ञानाधिकरणमात्मा । स द्विविधः । जीवात्मा परमात्मा चेति । तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मा एक एव सुखदुःखादिरहितः । जीवात्मा प्रतिशरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च ॥

ज्ञानाधिकरणेति ॥ "ज्ञानाश्रयत्वमात्मनो लक्षणम्" मूलमें अधिकरणपद जो दिया है सो अधिकरण नाम आश्रयका है सो ज्ञानका जो आश्रय होवे अर्थात् जिसमें समवायसम्बन्ध करके ज्ञान रहे उसीका नाम आत्मा है। न्यायमतमें आत्मा द्रव्य है और जड है ज्ञान उसका गुण है गुणगुणीका समवायसम्बन्ध होता है इसीवास्ते समवायसम्बन्ध करके ज्ञानाश्रयत्व आत्माका लक्षण है, यद्यपि कालिकसम्बन्ध करके सर्व पदार्थ कालमें रहते हैं तब कालिकसम्बन्ध करके ज्ञानभी कालमें रहता है तो ज्ञानाश्रयत्व कालमें आ जावेगा तथापि समवायसम्बन्ध करके ज्ञान आत्मामेंही रहता है कालमें नहीं रहता इसवास्ते लक्षणकी अतिव्याप्ति कालमें नहीं जाती और ज्ञानके सम्बन्धसेही आत्मामें चेतनता प्रतीत होती है स्वते नहीं। सेति ॥ सो आत्मा दो प्रकारका है. एक तो जीवात्मा है, दूसरा परमात्मा है। तत्रेति ॥ दोनोंमेंसे ईश्वर सर्वज्ञ परमात्मा एकही है, और वह सुखदुःखादिकोंसे रहित है। जीवेति ॥ और जीवात्मा जो है सो हरएक शरीरमें भिन्न भिन्न हैं परंतु दोनों विभु हैं। अर्थात्

ईश्वरात्मा तो विभु है हीं परंतु न्यायमतमें जितने जीवात्मा हैं सब विभु हैं और लोकांतरमें गमनागमन लिंगशरीरोंका होता है विभुका गमनागमन बनता नहीं जिस जीवात्माके लिंगशरीरका गमन होता है वह मानो उसी आत्मामें गौणतासे गमनागमन माना जाता है और सब जीवात्मा ईश्वरात्मा नित्य हैं और ईश्वरात्माके ज्ञानादिक गुण नित्य हैं और जीवात्माके ज्ञानादिक गुण अनित्य हैं और जैसे छिदिक्रियाके जो कुठारादिक करण हैं सो वडई कर्तासे विना लकडीको छेदन नहीं कर सक्के हैं तैसे शरीर इन्द्रियादिकभी विना कर्ता आत्माके अपनी अपनी क्रियाको नहीं कर सक्के हैं इसवास्ते शरीर-इन्द्रियादिकोंसे जीवात्मा भिन्न है और ईश्वरआत्मा शरीर-इन्द्रियोंसे रहित है किंतु जीवात्माही शरीर-इन्द्रियोंवाला है इतनाही जीवात्मा और ईश्वरआत्मामें फरक है और अपने आत्माका प्रत्यक्ष सब किसीको अपनेही मन करके होता है परंतु दूसरेके आत्माका प्रत्यक्ष नहीं होता किंतु अनुमान प्रमाण करके परका आत्मा जाना जाता है जैसे चलते रथको देखकर सारथिका अनुमान होता है याने इस रथके चलानेवाला कोई है क्योंकि विना सारथीके रथ खुदबखुद चल नहीं सक्का तैसे परके शरीरकी चेष्टाको देखकर परके आत्माकाभी अनुमान होता है अर्थात् विना आत्माके शरीरमें चेष्टा होती नहीं यदि विना आत्माकेभी चेष्टा हो तब मृतक शरीरमेंभी होनी चाहिये सो होती तो नहीं इसवास्ते शरीरसे भिन्न परके शरीरको चेष्टा करानेवालाभी कोई आत्मा है इस प्रकार परके आत्माकाभी ज्ञान होता है और अहंकारका आश्रयभी आत्माही है अर्थात् अहंप्रत्यय याने ज्ञान अर्थात् 'मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं, मैं धर्मी हूं, मैं अधर्मी हूं' इन ज्ञा-

नोंका आश्रय आत्माही है और सुखदुःखादिक सब जीवात्मा-केही धर्म हैं ईश्वरके नहीं हैं. आत्माका निरूपण कर दिया । अब मनका निरूपण करते हैं:—

सुखदुःखाद्युपलब्धिसाधनमिंद्रियं मनः । तच्च प्रत्यात्मनियतत्वादनंतं परमाणुरूपं नित्यं च ॥

सुखेति ॥ सुखादिकोंकी उपलब्धिका जो साधन होवे और इंद्रिय होवे उसका नाम मन है । उपलब्धि नाम ज्ञानका है । तच्चेति ॥ सो मन प्रत्येक आत्माके प्रति नियत होनेसे अनन्त हैं. अर्थात् हरएक जीवात्माके साथ एक एक मन रहता है, जीवात्मा अनंत हैं इसवास्ते मनभी अनंत हैं और मन परमाणुके बराबर सूक्ष्म है और नित्यभी है ॥ ननु मनके अणुत्वमें क्या प्रमाण है ? ॥ उ०—जितने ज्ञान उत्पन्न होते हैं चक्षुरिन्द्रियजन्य रसनाइन्द्रियजन्य वह सब एक कालमें नहीं होते अर्थात् जिस कालमें मनका चक्षुइन्द्रियके साथ सम्बन्ध होता है तब उस कालमें रूपका ज्ञान होता है रसका नहीं होता और जब कि मनका रसनाइन्द्रियके साथ सम्बन्ध होता है तब रसकाही ज्ञान होता है इसी प्रकार घ्राणादिकोंकोभी जान लेना अर्थात् सब ज्ञान एककालमें नहीं होते हैं इसीसे जाना जाता है कि, मन अणु है, जोकर मन शरीरके परिमाणवाला होता तब एक कालमेंही उसका सब इन्द्रियोंके साथ संयोग होता तो एक कालमेंही रूपरसादिकोंके ज्ञानभी हो जाते सो ऐसा तो नहीं होता इसीसे जाना जाता है कि मन अणु है ॥ ननु जब कि पुरुष एक लंभी पिराकरीको भक्षण करता है तब एक कालमें नाना ज्ञान होते हैं अर्थात् चक्षु करके उसके रूपकोभी देखता है, रसना करके उसके रसकोभी ग्रहण करता है, घ्राण करके

उसकी सुगंधीको लेता है, श्रोत्र करके कटकट शब्दकोभी सुनता जाता है इसीसे मालूम होता है मन अणु नहीं है ॥ उ०— मन अतिलघु है इसवास्ते शीघ्रही मनका नाना इन्द्रियोंके साथ सम्बन्ध हो जाता है, जैसे पीपलका सो पत्ता ऊपर नीचे करके रखा है और ऊपरसे उसमें एक सूईको घोंस देनेसे उस सौ पतेमें एक कालमें छेद होता है सो वह एक कालमें छेद मानना भ्रम है, क्योंकि क्रमसे उनमें छेद होता है अर्थात् पहले ऊपर-वालेमें छेद होता है तब पीछे नीचेवालेमें छेद होता है इसी क्रमसे सबमें छेद होता है तैसे मनका सम्बन्धभी पराकडी भ-क्षणकालमें क्रमसे सब इन्द्रियोंके साथ होता है परंतु मन अति-लघु और अति वेगवाला है वह जाना नहीं जाता मन अणुही परिमाणवाला है । मनका. निरूपण कर दिया । यहांतक द्रव्यों का निरूपण संक्षेपसे कह दिया॥अब गुणोंका निरूपण करते हैं:—

चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम् । तच्च शुक्लनीलपीत-रक्तहरितकपिशचित्रभेदात्सप्तविधम् । पृथिवीज-लतेजोवृत्ति । तत्र पृथिव्यां सप्तविधम् । अभास्वरं शुक्लं जले । भास्वरं शुक्लं तेजसि ॥

चक्षुरिति ॥ जो चक्षुमात्रग्राह्य हो और गुण हो उसका नाम रूप है अर्थात् जो केवल चक्षुइन्द्रिय करकेही ग्रहण कि-या जावे याने जिसका ज्ञान चक्षु करकेही हो और चौबीस गुणोंमें हो उसका नाम रूप है, यदि "गुणो रूपं" इतनाही लक्षण करते अर्थात् जो गुण हो वही रूप है तब रसादिकोंमें अतिव्याप्ति हो जाती क्योंकि गुण तो रसादिकभी हैं इसवास्ते चक्षुग्राह्यभी लक्षणमें कहा सो रसादिक गुण तो हैं परंतु चक्षु करके ग्राह्य नहीं हैं किंतु रसनाआदिकों करके ग्राह्य हैं इसवास्ते

उनमें अतिव्याप्ति नहीं आती और जो "चक्षुर्ग्राह्यं रूपं" इतनाही लक्षण करते अर्थात् जो चक्षु करके ग्राह्य हो वही रूप है तब रूपत्वादिकोंमें अतिव्याप्ति हो जाती क्योंकि रूपत्वादिकभी चक्षु करके ग्रहण होते हैं, जिस इन्द्रिय करके जिसका ग्रहण होता है उसी इन्द्रिय करके उसकी जातिकाभी ग्रहण होता है इस नियमसे । इसवास्ते लक्षणमें गुणपदभी दिया सो रूपत्व यदि चक्षु करके ग्राह्य तो है तथापि वह गुण नहीं है इसवास्ते उसमेंभी अतिव्याप्ति नहीं आती और जो लक्षणमें मात्रपद न देते तब संख्या आदिकोंमें अतिव्याप्ति होती क्योंकि एकत्वादिक संख्याभी चक्षु करके ग्राह्य है सो संख्यामें अतिव्याप्तिवारणके वास्ते लक्षणमें मात्रपद दिया सो संख्या यद्यपि चक्षु करके ग्राह्य तो है तथापि केवल चक्षु करके ग्राह्य नहीं है क्योंकि संख्या त्वगिन्द्रिय करकेभी ग्राह्य है अर्थात् अंधाभी गिनती कर लेता है इसवास्ते मात्रपद देनेसे अब अतिव्याप्ति नहीं आती । **तच्चेति** ॥ सो जो रूप है सो शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्र भेदसे सात प्रकारका है। **पृथिवीति** ॥ पृथिवी, जल, तेजमें वह रूप रहता है पृथिवीमें तो सातही प्रकारका रूप रहता है और अभास्वर शुक्ल याने मंदशुक्ल रूप जलमें रहता है और भास्वरशुक्ल रूप तेजमें रहता है अर्थात् प्रकाशमान शुक्लरूप तेजमें रहता है । रूपका निरूपण हो चुका ॥ अब रसका निरूपण करते हैं:—

रसनाग्राह्यो गुणो रसः । सच मधुराम्ललवणकटुकषायतिक्तभेदात् षड्विधः । पृथिवीजलवृत्तिः । पृथिव्यां षड्विधः । जले मधुर एव ॥

रसनेति ॥ जो रसनाइन्द्रिय करके ग्राह्य हो और गुण हो

उसीका नाम रस है । " **रसनाग्राह्यो रसः** " इतनाही लक्षण करते तब रसत्वजातिमें अतिव्याप्ति होती क्योंकि वहभी रसना करके ग्राह्य है इसवास्ते गुण कहा सो रसत्वजाति रसनाग्राह्य तो है परंतु गुण नहीं है, और जो " **गुणो रसः** " इतनाही लक्षण करते तब रूपादिकोंमें अतिव्याप्ति होती क्योंकि गुण तो रूपादिकभी हैं इसवास्ते रसनाग्राह्य कहा सो रूपादिक रसनाग्राह्य नहीं हैं इस वास्ते अब दोष नहीं आता । **सचेति ॥** सो रस मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय, तिक्त भेदसे छेः प्रकारका है । **पृथिवीति ॥** पृथिवी-जलमेंही रस रहता है । **पृथिव्यामिति ॥** पृथिवीमें छेही प्रकारका रस रहता है । **जलेति॥** जलमें मधुररसही रहता है ॥

घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः । स द्विविधः । सुरभिरसुरभिश्च ॥

जो घ्राणइन्द्रिय करकेही ग्राह्य हो अर्थात् घ्राणइन्द्रिय करकेही जिसका ज्ञान हो उसका नाम गन्ध है यहां परभी रसके लक्षणकी नाईं गन्धके लक्षणकी कृत्य कर लेनी । इसीप्रकार आगे गुणोंके लक्षणोंकी कृत्य जान लेनी । **स इति ॥** सो गन्ध दो प्रकारकी है एक तो सुरभि है याने सुगन्धी है, दूसरी असुरभी है याने दुर्गन्धी है, सो दोनों प्रकारकी गन्ध पृथिवीमेंही रहती है ॥

त्वगिंद्रियमात्रग्राह्यो गुणः स्पर्शः । सच त्रिविधः । शीतोष्णानुष्णाशीतभेदात् । पृथिव्यप्तेजोवायुवृत्तिः। तत्र शीतो जले । उष्णस्तेजसि । अनुष्णाशीतः पृथिवीवाय्वोः ॥

त्वगिति ॥ जो त्वगुइन्द्रियमात्र करके ग्राह्य हो और गुण

हो उसीका नाम स्पर्श है । स चेति ॥ सो स्पर्श तीन प्रकारका है एक तो शीतस्पर्श है, एक उष्णस्पर्श है, एक अनुष्णाशीत स्पर्श है अर्थात् जो न उष्ण होवे और न गर्म होवे उसका नाम अनुष्णाशीत स्पर्श है । तत्रेति ॥ तीन प्रकारके स्पर्शमेंसे शीत-स्पर्श जलमें रहता है, और उष्णस्पर्श तेजमें रहता है, और अनु-ष्णाशीत स्पर्श पृथिवी और वायुमें रहता है ॥

रूपादिचतुष्टयं पृथिव्यां पाकजमनित्यं च । अन्यत्रापाकजं नित्यमनित्यं च । नित्यगतं नि-त्यम् अनित्यगतमनित्यं च ॥

रूपादीति ॥ रूपादिक जो चतुष्टय है अर्थात् रूप, रस, गन्ध, स्पर्श सो पृथिवीमें तो पाकज हैं याने पाक करके उत्पन्न होते हैं, पाकज नाम तेजके साथ सम्बन्धसे रूपांतर हो जानेका है और पृथिवीमें जो रूपादिक हैं वह अनित्यभी हैं । अन्य-त्रेति ॥ पृथिवीसे अन्यत्र याने जलादिमें अर्थात् जल, तेज, वायुमें जो रूप, रस, स्पर्श हैं वह नित्यभी हैं और अनित्यभी हैं याने जलमें रूप, रस, स्पर्श और तेजमें रूप, स्पर्श वायुमें स्पर्श यह नित्यभी हैं और अनित्यभी हैं इनके परमाणुवोंमें जो रूपा-दिक हैं वह तो नित्य हैं और इनके कार्यमें जो रूपादिक हैं वह अनित्य हैं इस जगामें विजातीय याने विलक्षण तेजके संयो-गका नाम पाक है सो दिखाते हैं, जब कि कच्चे आमोंको पाय-लमें डाल दिया जाता है तब पायलके घाससे एक तेज उत्पन्न होता है उस तेजका आमोंके साथ संयोग होता है तब आमोंमें पूर्व रूपादिकोंका नाश और विलक्षण रूपादिकोंकी उत्पत्ति होती है अर्थात् किसी आमका तो पूर्व जो हरितरूप उसका नाश होकर पीतरूप हो जाता है परंतु उसका खटारस नहीं बदलता

और किसीका रस बदल जाता है रूप नहीं बदलता और किसीके रूप, रस, स्पर्श तीन तो बदलते हैं परंतु स्पर्श नहीं बदलता और किसीके चारों बदल जाते हैं इसीसे जाना जाता है जो एकतरहका तेजःसंयोग नहीं होता किंतु विलक्षण विलक्षण होता है यदि एकही तरहका होता तब सब आमोंमें एकही तरहका पाक होनेसे सबके रूपादिक एक कालमें बदल जाते सो ऐसा तो नहीं होता इसीसे जाना जाता है हरएक रूपादिकोंके नाश और रूपांतरकी उत्पत्तिको भिन्न भिन्न तेजःसंयोग कारण है और रूपादिकोंके पाकमें दो मत हैं, सो दिखाते हैं, एक तो पीलुपाकवादि है सो पीलु नाम परमाणुवोंका है अर्थात् वह परमाणुवोंमेंही पाक मानता है बने बनाये घटमें वह पाक नहीं मानता वो कहता है जब कि कच्चा घडा आवेमें डाला जाता है तब वेगवाले जो अग्निके अवयव उनका घटके अवयवोंके साथ संयोग होता है तब घट फूट जाता है और घटके सब परमाणु हो जाते हैं उन परमाणुवोंमें पाक होकर पूर्व श्यामरूपका नाश होकर रक्तरूपकी उत्पत्ति होती है फिर ईश्वरकी इच्छासे और भोक्ताके अदृष्टोंसे परमाणुवोंका संयोग होकर द्व्यणुकादि क्रमसे घट बन जाता है यह तो पिलुपाकवादिका मत है। दूसरा पिठरपाकवादीका मत है सो पिठरपाकवादि कहता है कि पिठर नाम मट्टीके बने हुए घटका है सो बने बनाये घटमें ही पाक होता है क्योंकि घटमें सूक्ष्म छिद्र हैं उन छिद्रों द्वारा अग्नि उसके भीतरभी प्रवेश कर जाती है भीतर बाहर घटके साथ अग्निका संयोग होनेसे बने बनाये घटमेंही पूर्व श्यामरूपका नाश और रक्तरूपकी उत्पत्ति होती है यदि ऐसा नहीं मानोगे तब "सोयं घटः" वही यह घट है ऐसी प्रत्यभिज्ञा होती है सो न

होनी चाहिये क्योंकि जो पूर्व घट अग्निमें डाला था वह तो फूट गया यह तो अब नया उत्पन्न हुवा है वह तो नहीं है और प्रत्यभिज्ञा होती है इसवास्ते परमाणुवोंमें पाक मानना ठीक नहीं है किंतु घटमेंही मानना ठीक है ॥ ननु प्रत्यभिज्ञा किसको कहते हैं ? ॥ उ०— " तत्तेदंतानवगाहि ज्ञानं प्रत्यभिज्ञा " अर्थात् तत्ता-इदंताको न विषय करनेवाला जो ज्ञान है उसीका नाम प्रत्यभिज्ञा है जैसे " सोयं देवदत्तः " वही यह देवदत्त है अर्थात् एक पुरुषको किसीने मथुरामें देखा फिर उसी पुरुषको काशीमें, तब वह कहता है वह यह पुरुष है जिसको मैंने पूर्व मथुरामें देखा था अब सोही यह पुरुष है यह जो ज्ञान है सो तत्काल तद्देश याने पूर्वकाल और मथुरादेशका त्याग और एतत्काल एतद्देश याने इस काल और काशीदेशका त्याग कर केवल पुरुषके शरीरमात्रको विषय करता है इसी ज्ञानका नाम प्रत्यभिज्ञा है । तैसे " सोयं घटः " वही यह घट है यह ज्ञानभी केवल पूर्ववाले घटकोही विषय करे है, इसीका नाम प्रत्यभिज्ञा है ॥

एकत्वादिव्यवहारासाधारणहेतुः संख्या । सा नवद्रव्यवृत्तिः । एकत्वादिपरार्धपर्यंता । एकत्वं नित्यमनित्यं च । नित्यगतं नित्यम् । अनित्यगतमनित्यम् । द्वित्वादिकं तु सर्वत्रानित्यमेव ॥

एकत्वेति ॥ एकत्वादिव्यवहारका जो हेतु होवे अर्थात् एक दो तीन चार इस गिनतीरूप व्यवहारका जो असाधारण कारण होवे उसीका नाम संख्या है । सेति ॥ वह संख्या नवही द्रव्योंमें रहती है ॥ ननु संख्याकी अवधिभी है या नहीं ? ॥ उ०— एकत्वसे लेकर अर्थात् एकसे लेकर परार्द्धपर्यंतही संख्याकी अवधि याने

समाप्ति है और जो परार्द्धसे अधिक है वह असंख्य कही जाती है उसीको अनंतभी कहते हैं, जिसकी समाप्ति न होवे वही अनंत है। एकत्वमिति ॥ और नित्य जो आकाशादिक हैं उनमें जो एकत्वसंख्या है वह नित्य है और अनित्य जो घटपटादिक हैं उनमें जो एकत्वसंख्या है वह अनित्य है इसवास्ते एकत्वसंख्या नित्यभी है और अनित्यभी है। द्वित्वादिकामिति ॥ और दित्वादिक जो संख्या है, अर्थात् दोसे लेकर परार्द्धपर्यंत जितनी संख्या है वह सब अनित्य है ॥

मानव्यवहारासाधारणकारणं परिमाणम् । नवद्रव्य-वृत्ति । तच्चतुर्विधम् । अणु महद्दीर्घं ह्रस्वं चेति ॥

मानेति ॥ मानव्यवहारका जो असाधारण कारण होवे उसका नाम परिमाण है, मान नाम मापका है याने यह छोटा है यह बडा है यह बहुतही छोटा यह बहुतही बडा है ऐसा जो व्यवहार होता है उसका कारण परिमाणही है। नवेति ॥ वह परिमाण नवही द्रव्योंमें रहता है। तच्चेति ॥ सो परिमाण चार प्रकारका है एक तो अणुपरिमाण है, दूसरा ह्रस्वपरिमाण है, तीसरा दीर्घ परिमाण है, चौथा महत्परिमाण है ॥

पृथग्व्यवहारासाधारणकारणं पृथक्त्वम् । सर्वद्रव्यवृत्ति॥

पृथगिति ॥ पृथक्व्यवहारका जो असाधारण कारण होवे उसका नाम पृथक्त्व है अर्थात् " अयमस्मात्पृथक् " यह इससे पृथक् है इस व्यवहारकारण पृथक्त्वही है। सर्वेति॥ वह पृथक्त्व सर्वद्रव्योंमें रहता है ॥

संयुक्तव्यवहारासाधारणो हेतुः संयोगः । सर्वद्रव्यवृत्तिः॥

संयुक्तेति ॥ संयुक्तव्यवहारका जो असाधारण हेतु हो उसीका नाम संयोग है सो यह संयोगभी सब द्रव्योंमें रहता है

और द्रव्योंकाही परस्पर संयोग होता क्योंकि ऐसा नियम है " द्रव्ययोरेव संयोगः " द्रव्योंकाही संयोग होता है द्रव्यका गुणादिकोंके साथ संयोग नहीं होता ऐसा नेम है और संयोग दो प्रकारका होता है एक तो क्रियाजन्य संयोग है दूसरा संयोगज संयोग है याने संयोगसे जन्य संयोग होता है जहां पर प्रथम हाथमें क्रिया उत्पन्न हुई और फिर हाथका पुस्तकके साथ संयोग हुआ वह क्रियासे जन्य संयोग है और हस्तपुस्तकके संयोग होनेसे शरीरपुस्तककाभी संयोग हो जाता है सो शरीर पुस्तकका जो संयोग है वह दूसरा संयोगज संयोग है ॥

संयोगनाशको गुणो विभागः । सर्वद्रव्यवृत्तिः ॥

संयोगेति ॥ जो संयोगका नाशक हो याने नाश करनेवाला हो और गुण हो उसका नाम विभाग है । **सर्वेति** ॥ वह विभागभी सब द्रव्योंमें रहता है सो विभागभी दो प्रकारका है एक तो क्रियासे जन्य विभाग है, हस्तमें प्रथम क्रिया हुई उससे हस्तपुस्तकका विभाग हुवा वह क्रियाजन्य विभाग है, दूसरा विभागज विभाग है हस्तपुस्तके विभागसे जो शरीरपुस्तकका विभाग है वह विभागज विभाग है हस्तका पुस्तकके साथ विभाग होनेसे शरीरपुस्तककाभी विभाग हो जाता है क्योंकि हस्त शरीरका अवयव है शरीर अवयवी है अवयवके विभागसे अवयवीकाभी विभाग हो जाता है और अवयवका द्रव्यांतरके साथ संयोग होनेसे अवयवीकाभी द्रव्यांतरके साथ संयोग हो जाता है॥

परापरव्यवहारासाधारणकारणे परत्वाऽपरत्वे । ते द्विविधे । दिक्कृते कालकृते चेति । दूरस्थे दिक्कृतं परत्वम् । समीपस्थे दिक्कृतमपरत्वम् । ज्येष्ठे कालकृतं परत्वम् । कनिष्ठे कालकृतमपरत्वम् ॥

परापरेति ॥ पर अपर व्यवहारका जो असाधारणकारण होवे उसका नाम परत्व अपरत्व है अर्थात् परव्यवहारका जो असाधारणकारण होवे उसका नाम परत्व है और अपरव्यवहारका जो असाधारणकारण होवे उसका नाम अपरत्व है । ते द्विविधे इति ॥ सो परत्व अपरत्व दो प्रकारके हैं एक तो दिक्कृत परत्व है, दूसरा कालकृत परत्व है । दूरस्थेति ॥ जो दूरमें स्थित पदार्थ है उसमें दिक्कृत परत्व है, जैसे पटनासे काशीकी अपेक्षा करके प्रयागराज पर है यह दिक्परत्व प्रयागराजमें है और पटनासे प्रयागकी अपेक्षा करके काशी अपर है याने समीप है यह प्रयागकी अपेक्षा करके काशीमें अपरत्व रहा । ज्येष्ठेति ॥ और ज्येष्ठमें कालकृत परत्व रहता है क्यों कि कनिष्ठकी अपेक्षासे बडेकी उत्पत्तिमें अधिक दिन बीते हैं इसवास्ते बडेमें कालकृत परत्व है और कनिष्ठमें याने छोटेमें बडेकी अपेक्षा करके कालकृत अपरत्व है क्योंकि बडेकी अपेक्षा करके छोटेकी उत्पत्तिमें कम दिन बीते हैं इसीवास्ते छोटेमें कालकृत अपरत्व रहता है ॥

आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम्।पृथ्वीजलमात्रवृत्ति॥

आद्येति ॥ आद्यपतनका जो असमवयिकारण होवे उसका नाम गुरुत्व है जब कि वृक्षसे फल गिरता है तब प्रथम जो भूमिपर गिरता है वही आद्यपतन है उसी आद्यपतनका असमवायिकारण गुरुत्व है जब कि वही फल एक जगासे कूदकर दूसरी तीसरी जगामें जाकर गिरता है तब वह द्वितीय, तृतीय पतन कहाता है उसका कारण वेग है गुरुत्व नहीं । पृथिवीति ॥ यह गुरुत्व पृथिवीजलमात्रमें रहता है गुरुत्व नाम भारापनका है ॥

आद्यस्पन्दनासमवायिकारणं द्रवत्वम् । पृथिव्यप्तेजोवृत्ति । तद्विविधम् । सांसिद्धिकं नैमित्तिकं च । सांसिद्धिकं जले । नैमित्तिकं पृथिवीतेजसोः । पृथिव्यां घृतादावग्निसंयोगजन्यं द्रवत्वम् । तेजसि सुवर्णादौ ॥

आद्यस्पन्दनेति ॥ आद्यस्पन्दनका जो असमवायिकारण होवे उसका नाम द्रवत्व है और जलमें चलनेकी क्रियाका नाम स्पन्दन है सो प्रथम जो जलमें क्रिया होती है उसीका असमवायिकारण द्रवत्व है द्वितीय, तृतीय क्रियाका असमवायिकारण वेग है । **पृथिवीति** ॥ सो द्रवत्व पृथिवी, जल, तेज तीनोंमें रहता है । **सांसिद्धिकमिति** ॥ सो द्रवत्व दो प्रकारका है एक तो सांसिद्धिक याने स्वाभाविक द्रवत्व है, दूसरा नैमित्तिक याने तेजःसंयोगसे द्रवत्व होता है दोनोंमेंसे जो सांसिद्धिक द्रवत्व है वह जलमेंही रहता है इसीवास्ते जलका स्वभावही निम्नदेशमें वहनेका, दूसरा नैमित्तिक पृथिवी और तेजमें रहता है । **पृथिव्यामिति** ॥ घृतादिरूप पृथिवीमें नैमित्तिक द्रवत्व रहता है क्योंकि घृत तेजके सम्बन्धसे द्रवीभूत हो जाता है और सुवर्णरूप तेजमेंभी नैमित्तिक द्रवत्व रहता है क्योंकि सुवर्णभी अतिअग्नि और सुहागा आदिकोंके सम्बन्ध करके द्रवीभूत हो जाता है ॥

चूर्णादिपिंडीभावहेतुर्गुणः स्नेहः । जलमात्रवृत्तिः ॥

चूर्णेति ॥ चूर्ण नाम पीसे हुवेका है चाहे वह पीसा न हो चाहे मृत्तिका हो उसके पिण्डीभावका जो कारण हो और गुण हो उसीका नाम स्नेह है । **जलमात्रेति** ॥ वह स्नेह जलमात्रमेंही रहता है अन्य द्रव्यमें नहीं रहता अर्थात् जब कि-

पीसानमें जल डालकर साना जाता है तब वह गोला बन जाता है सो उस गोलाकार बन जानेका कारण जलमें एक स्नेहगुण रहता है ॥

श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्दः । आकाशमात्रवृत्तिः । स द्विविधः । ध्वन्यात्मको वर्णात्मकश्चेति । ध्वन्यात्मको भेर्यादौ । वर्णात्मकः संस्कृतभाषादिरूपः ॥

श्रोत्रेति ॥ जो श्रोत्रइन्द्रिय करके ग्राह्य हो याने ग्रहण किया जावे और गुण होवे उसका नाम शब्द है । **आकाशेति ॥** वह शब्द आकाशमात्रमेंही रहता है । **सचेति ॥** सो शब्द दो प्रकारका है एक तो ध्वनिरूप शब्द है, दूसरा वर्णरूप शब्द है । **ध्वन्यात्मकेति ॥** जो भेरीआदिक बाजोंका शब्द है वह ध्वनीरूप है और जो संस्कतभाषादिरूप शब्द है वह वर्णात्मक है ॥

सर्वव्यवहारहेतुर्ज्ञानं बुद्धिः । सा द्विविधा । स्मृतिरनुभवश्च। संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः। तद्भिन्नं ज्ञानमनुभवः ॥

सर्वव्यवहारेति ॥ संपूर्ण व्यवहारका हेतु जो ज्ञान है उसीका नाम बुद्धि है । **सा द्विविधेति ॥** सो बुद्धि दो प्रकारकी है एक तो स्मृतिरूप है, दूसरी अनुभवरूप है । **संस्कारजन्येति ॥** संस्कारमात्रसे जन्य जो ज्ञान है उसका नाम स्मृति है । **तद्भिन्नेति ॥** स्मृतिसे भिन्न जो ज्ञान है उसका नाम अनुभव है। प्रथम आत्माका मनके साथ संयोग होता है फिर मनका इन्द्रियके साथ संयोग होता है फिर इन्द्रियका विषयके साथ संयोग होता है तब पदार्थका अनुभव होता है उसी इन्द्रियका

जब दूसरे पदार्थके साथ संयोग होता है तब प्रथम अनुभव भीतर मनमें उस पदार्थके संस्कारोंको उत्पन्न करके आप नष्ट हो जाता है वह संस्कार भीतर मनमें बने रहते हैं जब कोई उन संस्कारोंका उद्बोधक खडा हो जाता है तब फिर उन्हीं संस्कारोंसे स्मृतिज्ञान उत्पन्न हो आता है इसी वास्ते संस्कारोंसे जन्य स्मृतिको माना है ॥

स द्विविधः । यथार्थोऽयथार्थश्चेति । तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः । यथा रजते इदं रजतमिति ज्ञानम् । सैव प्रमेत्युच्यते ॥

सेति ॥ सो अनुभव दो प्रकारका है । यथार्थेति ॥ एक तो यथार्थ अनुभव है, दूसरा अयथार्थ अनुभव है. दोनोंमेंसे प्रथम यथार्थानुभवको दिखलाते हैं । तद्वतीति ॥ मूलमें जो तत्-पद है उस तत्पद करके जाति लेनी, जैसे सच्ची रजतमें जहां "इदं रजतम्" यह रजत है ऐसा ज्ञान होता है तहां पर तत्पद करके रजतत्व, उस रजतत्ववाला हुवा रजत उस रजतमें तत्प्रकारक याने रजतत्वप्रकारक जो ज्ञान है वह यथार्थानुभव ज्ञान है याने सच्चा ज्ञान है इसीको प्रमाज्ञानभी कहते हैं और "इदं रजतम्" इस ज्ञानमें रजत विशेष्य रजतत्व प्रकार है इसवास्ते रजतविशेष्यक रजतत्वप्रकारक यह ज्ञान है॥

तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः । यथा शुक्ताविदं रजतम् इति ज्ञानम् । सैवाऽप्रमेत्युच्यते ॥

तदभाववतीति ॥ तत्पद करके रजतत्व, उस रजतत्वके अभाववाली हुई शुक्ति क्योंकि शुक्तिमें रजतत्व नहीं रहता उस

रजतत्वाऽभाववाली शुक्तिमें जो " इदं रजतम् " यह रजत है ऐसा ज्ञान है उस ज्ञानका नाम अयथार्थानुभव है । सैवेति ॥ इसी ज्ञानको भ्रमभी कहते हैं सो यह ज्ञान रजतत्वप्रकारक शुक्तिविशेष्यक है क्योंकि इस ज्ञानमें रजतत्व प्रकार है शुक्ति विशेष्य है ॥

यथार्थानुभवश्चतुर्विधः । प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशाब्दभेदात् । तत्करणमपि चतुर्विधम् । प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात् ॥

यथार्थानुभवेति ॥ यथार्थानुभव चार प्रकारका है प्रत्यक्ष १, अनुमिति २, उपमिति ३, शाब्द ४, भेदसे सो इनका निरूपण आपही ग्रन्थकार आगे करेंगे। **तत्करणमिति ॥** यथार्थानुभवके करणभी चार प्रकारके हैं; प्रत्यक्ष १, अनुमान २, उपमान ३, शब्द ४, भेदसे ॥

व्यापारवदसाधारणं कारणं करणम् । अनन्यथासिद्धकार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम् । कार्यं प्रागभावप्रतियोगि ॥

व्यापारवदिति ॥ जो व्यापारवाला हो और असाधारण कारण हो उसीको करण कहते हैं, लक्षणकी कुक्षिमें व्यापारवत्पद दिया है इसवास्ते व्यापारके लक्षणकोभी दिखाते हैं **" तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनको व्यापारः "** जो तिससे जन्य हो और तिससे जो जन्य उसका जनक हो उसका नाम व्यापार है सो घटकी उत्पत्तिमें चक्रका भ्रमणरूप व्यापार है क्योंकि चक्रपर जब घटको बनाने लगते हैं तब चक्रको दण्डसे घुमाते हैं सो चक्रका जो घूमना है सो दण्ड करकेही होता है इसवास्ते लक्षणमें जो तत्पद है उस करके दण्डका ग्रहण

किया है सो भ्रमणरूप व्यापार दण्डसे जन्यभी है और तिसी दण्डसे जन्य जो घट उसका जनकभी है इसवास्ते घटकी उत्पत्तिमें भ्रमरूप व्यापार है और दण्डसे घट इसवास्ते जन्य है कि,जो दण्डके सत्व होनेसेही घटकासत्व होताहै इसीसे दण्ड घटका जनकभी है और दण्ड भ्रमीरूप व्यापारवालाभी है और घटके प्रति असाधारणकारणभी है इसवास्ते दण्ड घटके प्रति करणभी है । **अनन्यथासिद्धेति ॥** जो अन्यथासिद्ध न हो और नेम करके कार्यकी उत्पत्तिसे पूर्व वर्ते याने रहे उसका नाम कारण है जिससे विना कार्यकी उत्पत्ति हो जावे वह कार्यके प्रति अन्यथा सिद्ध होता है जैसे रासभ याने गधा जो है उससे विना घटरूप कार्यकी उत्पत्ति होती है इसवास्ते वह अन्यथासिद्ध है तैसेही दण्डत्व दण्डवृत्ति रूपादिकभी घटके प्रति अन्यथासिद्ध हैं और दण्ड अन्यथासिद्ध नहीं है क्योंकि दण्डसे विना घटकी उत्पत्ति नहीं होती इसवास्ते दण्ड अन्यथासिद्धिसे शून्यभी है और घटरूप कार्यकी उत्पत्तिसे पूर्व रहताभी है दण्डही घटके प्रति कारण है । **कार्यमिति ॥** जो प्रागभावका प्रतियोगी होवे उसका नाम कार्य है " **यस्याभावः स प्रतियोगी** " जिसका अभाव होता है वह अपने अभावका प्रतियोगि होता है, सो घटका अभाव घटकी उत्पत्तिसे पूर्व अर्थात् जबतक घट नहीं उत्पन्न होता है तबतक कपालोंमें रहता जब घट उत्पन्न हो जाता है तब वह घट अपने अभावका प्रतियोगी है सोही कार्य है, इसी प्रकार सर्वत्र कार्यमें जान लेना ॥

कारणं त्रिविधम् । समवाय्यसमवायिनिमित्तभेदात् । यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम् । यथा तन्तवः पटस्य, पटश्च स्वगतरूपादेः ॥

कारणमिति ॥ कारण तीन प्रकारका है एक तो समवायिकारण है, दूसरा असमवायिकारण है, तीसरा निमित्तकारण है । यत्समवेतमिति ॥ यत् याने यस्मिन् अर्थात् जिसमें समवेत होकर याने समवायसम्बन्ध करके कार्य उत्पन्न होवे उसीका नाम समवायिकारण है । यथेति ॥ जैसे तन्तु जो हैं सो पटका समवायिकारण है क्योंकि तन्तुवोंमें पट समवायसम्बन्ध करके उत्पन्न होता है । पटश्चेति ॥ च पुनः पट जो है सो पटगत रूपादिकोंके प्रति असमवायिकारण है क्योंकि पटके रूपादिक समवायसम्बन्ध करके पटमेंही रहते हैं याने उत्पन्न होते हैं ॥

कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं कारणम् असमवायिकारणम् । यथा तन्तुसंयोगः पटस्य, तन्तुरूपं पटरूपस्य ॥

कार्येणेति ॥ कार्यके साथ अथवा कारणके साथ एकही अर्थमें जो समवेत हो अर्थात् समवायसम्बन्ध करके रहे और कारण होवे उसका नाम असमवायिकारण है । यथेति ॥ जैसे तंतुसंयोग जो है सो पटका असमवायिकारण है, यह कार्यके साथ तंतुसंयोगको असमवायिकारणता दिखाई है, कार्य कौन है ? पट, सो पटरूप कार्य कहां रहा ? तंतुवोंमें, वहां पर तंतुसंयोगभी समवायसम्बन्ध करके रहता है और तंतुसंयोग पटका कारणभी है इसवास्ते तन्तुसंयोग पटके प्रति असमवायिकारण है । अब कारणके साथ असमवायिकारणताको दिखाते हैं । तन्तुरूपमिति ॥ जैसे तन्तुरूप जो है सो पटरूपके प्रति असमवायिकारण है पटमें जो रूप है उसका समवायिकारण पट है सो पट कहां रहा ? तन्तुवोंमें, और तन्तुरूपभी तन्तुवोंमें रहा

और तन्तुरूप पटरूपके प्रति कारणभी है क्योंकि तन्तुरूपसेही पटमें रूप होता है इसवास्ते तन्तुरूप पटरूपके प्रति असमवायिकारण है ॥

तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम् । यथा तुरीवेमादिकं पटस्य । तदेतत्त्रिविधकारणमध्ये यदसाधारणं कारणं तदेव करणम् ॥

तदुभयभिन्नमिति॥ समवायि, असमवायि कारणसे भिन्न जो कारण है उसका नाम निमित्तकारण है । **यथेति ॥** जैसे तुरी वेमादिक जो हैं सो पटके प्रति निमित्तकारण हैं क्योंकि पटका समवायिकारण तन्तु हैं और असमवायिकारण तन्तुसंयोग है इन दोनोंसे भिन्न तुरीवेमादिक हैं और पटके प्रति तुरीवेमा कारणभी हैं इसवास्ते यह पटका निमित्त कारण हैं जिससे कि पट बिननेके समय पटको ठोकते जाते हैं बिनते जाते हैं उसका नाम वेम है और जो काष्ठ की छोटीसी नावकाकी तरह बनी रहती है और उसमें सूतकी नली लगी रहती है पट बिननेके समय उसीको इधर उधरसे चलाते हैं तब पट बिना जाता है उसका नाम तुरी है । **तदेतदिति ॥** सो इस तीन प्रकारके कारणोंके मध्यमें जो असाधारणकारण है उसीका नाम करण है । मूलमें जो असाधारणकारणपदका ग्रहण किया है सो व्यापारवाला लेना और ऐसा अर्थ करना जो व्यापारवाला हो और असाधारणकारण हो उसीका नाम करण है ॥

तत्र प्रत्यक्षज्ञानकरणं प्रत्यक्षम् ॥

तत्रेति ॥ चार प्रकारके प्रमाणोंमेंसे प्रत्यक्षप्रमाणका जो करण होवे उसीका नाम प्रत्यक्ष है अर्थात् प्रत्यक्षप्रमाण है और चार्वाकमतवाले एक प्रत्यक्षकोही प्रमाण मानते हैं और

गोतम और बौद्ध प्रत्यक्ष तथा अनुमिति दोही प्रमाण मानते हैं और कोई नैयायिकका एकदेशि प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति तीनोंकोही प्रमाण मानता है और प्रभाकर प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति, शाब्द, अर्थापत्ति इन पांचोंकोही प्रमाण मानता है और भट्टमीमांसक तथा वेदांती प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति, शाब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि यह छेही प्रमाण मानते हैं और पौराणिक छे पूर्ववाले और सम्भव ऐतिह्य दो यह मिलाके आठ मानते हैं और तान्त्रिक आठ पूर्ववाले और एक चेष्टा सब मिलाकर नवही प्रमाण मानते हैं सो इन सबका मानना ठीक नहीं है क्योंकि युक्तियोंसे विरुद्ध है इसवास्ते मूलकारने चारही प्रमाण माने हैं वही ठीक हैं और बाकीके जो अर्थापत्ति आदिक हैं सो उनका इनमेंही अन्तर्भाव हो जाता है याने अर्थापत्तिका तो अनुमितिमें अन्तर्भाव है अनुपलब्धिका अभावमें अन्तर्भाव है और बाकीके जो ऐतिह्यादिक हैं उनकाभी अनुमित्यादिकोंमें योग्यता देखकर अन्तर्भावकर लेना॥

इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् ॥

इन्द्रियमिति ॥ इन्द्रिय और अर्थका जो सन्निकर्ष याने सम्बन्ध उससे जन्य जो ज्ञान उसीका नाम प्रत्यक्ष है, अर्थ नाम विषयका है अर्थात् जब चक्षुरादि इन्द्रियोंका घटादिक विषयोंके साथ सम्बन्ध होता है तब " अयं घटः, अयं पटः " यह घट है, यह पट है इत्यादि ज्ञान होते हैं उन्हीं ज्ञानोंका नाम प्रत्यक्षज्ञान है "इन्द्रियजन्यं प्रत्यक्षम्" इतनाही यदि लक्षण करते तब इन्द्रियवृत्ति जो रूपादिक हैं उनमें अतिव्याप्ति होती क्योंकि इन्द्रियोंसे जन्य तो इन्द्रियोंके रूपादिकभी हैं इसवास्ते ज्ञानपदभी दिया वह इन्द्रियोंके रूपादिक इन्द्रियोंसे जन्य तो हैं

परंतु वह ज्ञान नहीं है अब अतिव्याप्ति नहीं आती और जो "ज्ञानं प्रत्यक्षम्" इतनाही लक्षण करते तब अनुमितिआदिकोंमें अतिव्याप्ति होती क्योंकि ज्ञान तो अनुमिति आदिकभी है इसवास्ते 'इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं' कहा सो अनुमिति इन्द्रियार्थसन्निकर्षसे जन्य नहीं है यद्यपि न्यायमतमें मनकोभी इन्द्रिय माना है और मनरूपी इन्द्रिय करके अनुमितिभी जन्य है तथापि इन्द्रियत्वरूप करके इन्द्रियोंको जिस ज्ञानमें करणता है उसी ज्ञानका नाम प्रत्यक्ष है सो मनको अनुमितिआदिकोंमें इन्द्रियत्वरूप करके करणता नहीं किंतु मनस्त्वेन कारणता है इसवास्ते दोष नहीं आता ॥ ननु ईश्वरके प्रत्यक्षमें अव्याप्ति हुई क्योंकि ईश्वरका प्रत्यक्ष इन्द्रियजन्य नहीं है और प्रत्यक्षज्ञान तो वहभी है परंतु प्रत्यक्षका लक्षण उसमें नहीं जाता ॥ उ०— ईश्वरका प्रत्यक्ष इस लक्षणका लक्ष्य नहीं है क्यों कि जन्यप्रत्यक्षकाही यह लक्षण किया है सो जन्यप्रत्यक्ष जीवकाही होता है ईश्वरका ज्ञान नित्य है इसवास्ते अव्याप्ति दोष नहीं आता यदि तुमको ईश्वर-जीव-साधारण प्रत्यक्षका लक्षण करना हो तब " ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षं " एसा लक्षण करो, नहीं है ज्ञान करणं जिसका ऐसा जो ज्ञान है उसका नाम प्रत्यक्ष है यह लक्षण जीवके प्रत्यक्षमें और ईश्वरके प्रत्यक्षमें अर्थात् दोनोंके प्रत्यक्षमें घट सक्ता है क्योंकि अनुमितिमें व्याप्तिज्ञानको करणता है और उपमितिमें सादृश्यज्ञानको करणता है और शाब्दबोधमें पदज्ञानको करणता है और स्मृतिमें अनुभवको करणता है इसवास्ते अनुमितिआदिक ज्ञानाकरणक नहीं हो सक्ते किंतु ज्ञानकरणकही हैं इसवास्ते अनुमिति आदिकोंमें इस लक्षणकी अतिव्याप्ति नही हो सक्ती और ईश्वरका प्रत्यक्ष तथा जीवके

प्रत्यक्ष ज्ञानाकरणकही है क्योंकि उसका कोई ज्ञान करण नहीं है इसवास्ते यह प्रत्यक्षका लक्षण निर्दोष है ॥

तद्विविधम् । निर्विकल्पकं सविल्पकं चेति । तत्र निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम् । यथेदं किंचि-दिति । सप्रकारकं ज्ञानं सविल्पकम् । यथा डि-त्थोयं ब्राह्मणोयं श्यामोयम् ॥

तद्विविधमिति ॥ सो प्रत्यक्षज्ञान दो प्रकारका है एक तो निर्विकल्पक है दूसरा सविकल्पक है। **तत्रेति** ॥ तत्र दोनोंमेंसे निष्प्रकारक जो ज्ञान है सो निर्विकल्पक है । **यथेति** ॥ जैसे दूरसे जो वस्तु देखी उसका जो ऐसा ज्ञान हुआ कि ' जो कुछ यह है' इसी ज्ञानका नाम निर्विकल्पक है,प्रकार नाम विशेषणका है जिस ज्ञानमें किसीभी विशेषणकी प्रतीती न हो उसी ज्ञानका नाम निर्विकल्पक है । **सप्रकारकमिति** ॥ प्रकारके सहित जो ज्ञान है उसका नाम सप्रकारक है याने सविकल्पक है । **यथेति** ॥ जैसे " **डित्थोयं** " यह डित्थ है, " **ब्राह्मणोयं** " यह ब्राह्मण है, " **श्यामोयं** " यह श्याम है । अब इन ज्ञानों-में डित्थत्व, ब्राह्मणत्व, श्यामत्व प्रकार हैं इस वास्ते यह सब सप्रकारक ज्ञान है ॥

प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिंद्रियार्थसन्निकर्षः षड्विधः । संयो-गः, संयुक्तसमवायः, संयुक्तसमवेतसमवायः,सम-वायः, समवेतसमवायः, विशेषणविशेष्यभावश्चेति ॥

प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिति ॥ प्रत्यक्षज्ञानका हेतु जो इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष पूर्व कहा है सो छे प्रकारका है एक तो संयोग है, दू-सरा संयुक्तसमवाय है, तीसरा संयुक्तसमवेतसमवाय है, चौथा समवाय है,पांचवां समवेतसमवाय है,छटा विशेषणविशेष्यभाव है,

सो इन छे प्रकारके सम्बन्धों करकेही यावत् पदार्थोंका प्रत्यक्ष होता है इसवास्ते यहभी प्रत्यक्षज्ञानका कारण है क्योंकि विना इन्द्रियके सम्बन्धसे कोईभी प्रत्यक्ष नहीं होता ॥

घटप्रत्यक्षजनने संयोगः सन्निकर्षः । घटरूपप्रत्यक्षजनने संयुक्तसमवायः सन्निकर्षः । चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपस्य समवायात् । रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्तसमवेतसमवायः सन्निकर्षः । चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपं समवेतं तत्र रूपत्वस्य समवायात् ॥

घटप्रत्यक्षजनन इति ॥ घटके प्रत्यक्ष करनेमें संयोगसम्बन्धही कारण है अर्थात् जब कि चक्षुइन्द्रियका घटके साथ संयोगसम्बन्ध होता है तब यह घट है ऐसा ज्ञान होता है इस वास्ते द्रव्यप्रत्यक्षमें सर्वत्रही संयोगसन्निकर्ष कारण है । **घटरूपेति ॥** घटमें जो रूप उसके प्रत्यक्षमें संयुक्तसमवाय सन्निकर्षही कारण है सन्निकर्ष नाम सम्बन्धका है, जब कि चक्षुका घटके साथ सम्बन्ध होता है तब रूप तो घटमें समवायसम्बन्ध करके रहताही है वहां पर संयुक्तसमवायरूपही सम्बन्ध करके चक्षु रूपके ऊपर चला जाता है तब रूपकाभी प्रत्यक्ष हो जाता है । **रूपत्वसामान्येति ॥** रूपमें जो रूपत्वजाति उसके प्रत्यक्षमें संयुक्तसमवेतसमवाय सन्निकर्षही कारण है क्योंकि चक्षुसंयुक्त हुवा घट उस घटमें समवेत है रूप उस रूपमें समवायसम्बन्ध करके रूपत्व रहताही है इसवास्ते चक्षु जो है सो संयुक्तसमवेतसमवाय करके रूपत्वके ऊपरभी जा रहता है, रूपत्वजातिका प्रत्यक्ष इसी सम्बन्ध करके होता है ॥

श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः सन्निकर्षः । कर्णविवरवृत्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वात् शब्दस्याका-

शगुणत्वात् गुणगुणिनोश्च समवायात् । शब्दत्व-
साक्षात्कारे समवेतसमवायः सन्निकर्षः । श्रोत्रसम-
वेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात् । अभावप्रत्यक्षे
विशेषणविशेष्यभावः सन्निकर्षः । घटाभाववद्भू-
तलमित्यत्र चक्षुःसंयुक्ते भूतले घटाभावस्य वि-
शेषणत्वात् ॥

श्रोत्रेणेति ॥ श्रोत्रइन्द्रिय करके शब्दके साक्षात्करणमें याने प्रत्यक्ष करनेमें समवाय सन्निकर्षही कारण है क्योंकि कर्णके छिद्रमें जो आकाश है उसीका नाम श्रोत्र है और शब्द आकाशका गुण है गुण और गुणिका समवायसम्बन्ध होता है इसवास्ते शब्दके प्रत्यक्षमें समवायसन्निकर्षही कारण है । शब्दत्वेति ॥ शब्दत्वजातिके साक्षात्कारमें समवेतसमवाय सन्निकर्षही कारण है क्योंकि श्रोत्रमें समवेत शब्द है आगे शब्दमें समवाय करके शब्दत्व रहता है सो श्रोत्र जो है वह समवेतसमवायसन्निकर्ष करके शब्दत्वपर जा रहता है इसवास्ते शब्दत्वकाभी प्रत्यक्ष हो जाता है । अभावेति ॥ अभावके प्रत्यक्षमें विशेषणविशेष्यभाव सन्निकर्षही कारण है " घटाभाववद्भूतलम् " घटाभाववाली भूतल है इस जगामें चक्षुका संयोग भूतलके साथ हुवा इस लिये चक्षुसंयुक्त भूतल हुई उस भूतलमें घटाभाव विशेषण है भूतल विशेष्य है और जहां ऐसी प्रतिती होगी " भूतले घटो नास्ति " भूतलमें घट नहीं है, वहांपर घटाभाव विशेष्य है भूतल विशेषण है इसवास्ते अभावके प्रत्यक्षमें विशेषणविशेष्यही सम्बन्ध है और कोई सम्बन्ध नहीं है ॥ ननु दूर देशमें भेरी-दण्ड-संयोगादिकोंसे जो शब्द उत्पन्न हुवा है उस शब्दका श्रोत्रइन्द्रियके साथ कैसे सम्बन्ध होगा क्योंकि श्रोत्र-

इन्द्रिय तो तुमारे मतमें कर्णके छिद्रवर्ती आकाशका नाम है और वह अपने स्थानसे जा नहीं सक्ता तब शब्दका प्रत्यक्ष नहीं होगा ॥ उ०—वीचीतरंगन्याय करके, जैसे समुद्रमें एक लहर उठी उससे दूसरी फिर तिससे तीसरी इसी प्रकार लहरसे लहर उठते उठते फिर किनारेपर आ लगती है इसी प्रकार दूर देशमें जो शब्द उत्पन्न हुवा है वह दूसरे शब्दको उत्पन्न करके नष्ट हो गया उससे तीसरा हुवा इसी प्रकार लहरकी तरह एक शब्द कानमें आकर उत्पन्न होता है उसीका श्रोत्रइन्द्रिय करके ग्रहण होता है इस रीतिसे शब्दके प्रत्यक्षमेंभी कोई दोष नहीं है॥ ननु तैलगत जो उष्णता अर्थात् जब तैलको अग्निपर रखा तब उसमें जो तेज आ जाता है उस तेजके रूपका प्रत्यक्ष चक्षु करके क्यों नहीं होता चक्षुका संयोग तो वहांपर हैही, होना चाहिये ॥ उ०—रूप दो प्रकारका है एक तो उद्भूत रूप है, दूसरा अनुद्भूत रूप है दोनोंमेंसे उद्भूत रूपका ही चक्षु करके ग्रहण होता है अनुद्भूतरूपका नहीं होता सो तैलमें अनुद्भूत रूप है इसवास्ते चक्षु उसको ग्रहण नहीं कर सक्ता और चाक्षुषप्रत्यक्षमें अर्थात् चक्षुइन्द्रियजन्य प्रत्यक्षमें आलोकसंयोग और उद्भूतरूपभी कारण है अर्थात् आलोक याने प्रकाशका संयोग जहां पर होता है और उद्भूतरूपभी होता है तहां परही चक्षु करके प्रत्यक्ष होता है इसवास्ते द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमें आलोकसंयोग और उद्भूतरूपको समवायसम्बन्ध करके कारणता है इसी प्रकार रासनप्रत्यक्षमें अर्थात् रसनाइन्द्रियजन्य प्रत्यक्षमें उद्भूतरसको कारणता है और घ्राणइन्द्रियजन्य प्रत्यक्षमें उद्भूतगन्धको कारणता इसी प्रकार सर्वत्र जानना ॥

एवं सन्निकर्षषट्कजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् । तत्करणमि-

न्द्रियम् । तस्मादिन्द्रियं प्रत्यक्षप्रमाणमिति सिद्धम् ॥

इति तर्कसंग्रहे प्रत्यक्षखण्डं समाप्तम् ॥

एवमिति ॥ एवं पूर्वोक्तप्रकार करके छै प्रकारके सन्निकर्षसे जन्य जो ज्ञान है उसका नाम प्रत्यक्ष है । **तत्करणमिति** ॥ तिस प्रत्यक्षज्ञानका करण इन्द्रिय है । **तस्मादिति** ॥ तिस कारणसे इन्द्रिय जो हैं वही प्रत्यक्षप्रमाण हैं यह वार्ता सिद्ध भई ॥

इतिश्रीमदुदासीनपरमहंसपरमानंदसमाख्याधरेण-काशीनिवासिना कृतायां सुबोधिनीनाम्न्यांभा-षाटीकायां प्रत्यक्षखण्डः समाप्तः ॥ १ ॥

अथानुमानखण्डम्.

अनुमितिकरणमनुमानम् ।

परामर्शजन्यं ज्ञानमनुमितिः ॥

अब अनुमानखण्डका निरूपण करते हैं:—**अनुमितीति** ॥ अनुमितिज्ञानका जो करण होवे उसका नाम अनुमान है । **परामर्शेति** ॥ परामर्शसे जन्य जो ज्ञान उसका नाम अनुमिति है । यदि "**ज्ञानं अनुमितिः**" इतनाही लक्षण करते तब प्रत्यक्षादिकोंमें अतिव्याप्ति हो जाती क्योंकि ज्ञान तो प्रत्यक्षा-दिकभी है इसवास्ते परामर्शजन्यं कहा सो प्रत्यक्षादिक परामर्शसे जन्य नहीं है और "**परामर्शजन्यं अनुमितिः**" इतनाही लक्षण करते तब परामर्शसे जन्य परामर्शका ध्वंसभी है क्योंकि स्वनाशके प्रति प्रतियोगिकोभी कारणता मानी है, परामर्शके ध्वंसमें लक्षण चला जाता इसवास्ते ज्ञानं कहा सो परामर्शका ध्वंस परामर्शसे

जन्य तो है परंतु ज्ञान नहीं है इसवास्ते लक्षण नहीं जाता इसीसे यह लक्षण निर्दोष है ॥

व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः । यथा वह्निव्याप्यधूमवान् अयं पर्वतः इति ज्ञानं परामर्शः ॥

व्याप्तिविशिष्टेति ॥ व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानका नाम परामर्श है अर्थात् व्याप्तिको विषय करनेवाला जो पक्षमें हेतुका ज्ञान है उस ज्ञानका नाम परामर्श है अब परामर्शके स्वरूपको दिखाते हैं । यथेति ॥ जैसे वन्हिका व्याप्य जो धूम उस धूमवाला यह पर्वत है इसी ज्ञानका नाम परामर्श है सो यह ज्ञान जो है सो वन्हिधूमकी जो सहचाररूप व्याप्ति उस व्याप्ति करके विशिष्ट पक्ष जो पर्वत उसमें हेतु जो धूम उसका ज्ञान है इसवास्ते इसी ज्ञानका नाम परामर्श है और अनुमितिमें व्याप्तिज्ञान जो है सो करण है और परामर्श व्यापार है क्योंकि प्रथम पर्वतमें धूमको देखकर व्याप्तिका स्मरण होता है पश्चात् परामर्श होता है सो परामर्श व्याप्तिज्ञानसे जन्यभी है और व्याप्तिज्ञानसे जन्य जो अनुमिति उसका जनकभी है, व्यापारका लक्षण जो पूर्व कर आये हैं सो इसमें घटता है ॥

तज्जन्यं 'पर्वतो वह्निमान्' इति ज्ञानमनुमितिः । यत्र यत्र धूमः तत्र तत्राग्निरिति साहचर्यनियमो व्याप्तिः । व्याप्यस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मता॥

तज्जन्यमिति ॥ तज्जन्य नाम परामर्शजन्य अर्थात् परामर्शसे उत्पन्न जो ज्ञान " पर्वतो वह्निमान् " पर्वत यह वन्हिवाला है ऐसा जो ज्ञान इसी ज्ञानका नाम अनुमिति है । अब व्याप्तिके आकारको दिखाते हैं । यत्र यत्रेति ॥ " यत्र यत्र

धूमः" जहां जहां धूम है " तत्र तत्राग्निः " तहां तहां अग्नि है ऐसा जो धूम और वन्हिका सहचारज्ञान है (एक अधिकरणमें दोनोंका ज्ञान है) अर्थात् दोनोंके इकट्ठे रहनेका जो ज्ञान है इसी ज्ञानका नाम व्याप्तिज्ञान है । व्याप्यस्येति ॥ व्याप्य नाम हेतुका है सो हेतुका याने धूमका जो पर्वतादिनिरूप्यवृत्तित्वज्ञान है याने पर्वतमें रहनेका जो ज्ञान है इसी ज्ञानका नाम पक्षधर्मताज्ञान है ॥

अनुमानं द्विविधम् । स्वार्थं परार्थं च । स्वार्थं स्वानुमितिहेतुः । तथाहि । स्वयमेव भूयो भूयो दर्शनेन 'यत्र यत्र धूमस्तत्राग्निः' इति महानसादौ व्याप्तिं गृहीत्वा पर्वतसमीपं गत्वा तद्गते चाग्नौ संदिहानः पर्वते धूमं पश्यन् व्याप्तिं स्मरति 'यत्र यत्र धूमस्तत्राग्निः' इति ॥

अनुमानमिति ॥ अनुमान दो प्रकारका है एक तो स्वार्थ अनुमान है, दूसरा परार्थ अनुमान है. अपनी अनुमितिका जो हेतु होवे उसका नाम स्वार्थाऽनुमान है । तथाहीति ॥ उसीको प्रथम दिखाते हैं । स्वयमेवेति ॥ आपही जो पुरुष " भूयो भूयो " पुनः पुनः देखता है " यत्र यत्र धूमः " जहां जहां धूम रहता है तहां तहां अग्नि रहती है ऐसा महानसादिकोंमें (रसोईके स्थानमें) नित्य देखता है वहां पर वन्हिधूमकी सहचाररूप व्याप्तिको ग्रहणकर दैवगतीसे किसी दिन पर्वतके समीप गया वहां पर जाकर पहले अग्निमें संदेहवाला हुआ याने पर्वतमें वन्हि है या नहीं ऐसा उसको संदेह हुवा पश्चात् पर्वतमें उसने धूमको देखा धूमको देखतेही उसको धूमवन्हिकी सहचाररूप व्याप्तिज्ञानका स्मरण हो आया "यत्र यत्र धूमस्तत्राग्निरिति"॥

तदनंतरं 'वन्हिव्याप्यधूमवानयं पर्वतः' इति ज्ञानमुत्पद्यते। अयमेव लिंगपरामर्श इत्युच्यते। तस्मात् 'पर्वतो वन्हिमान्' इति ज्ञानमनुमिति रुत्पद्यते। तदेतत्स्वार्थानुमानम् ॥

तदनंतरमिति ॥ व्याप्तिके स्मरणसे अनंतर। वन्हिव्याप्येति॥ वन्हिका व्याप्य धूमवाला यह पर्वत है ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है इसी ज्ञानको लिङ्गपरामर्शभी कहते हैं "तस्मात्" तिस लिङ्गपरामर्शसे अर्थात् लिङ्गज्ञानसे "पर्वतो वन्हिमान्" यह पर्वत वन्हिवाला है ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है। तदेतदिति ॥ सो इसी ज्ञानका नाम स्वार्थानुमान है। स्वार्थाऽनुमानका निरूपण कर दिया अब परार्थानुमानको दिखाते हैंः—

यत्तु स्वयं धूमादग्निमनुमाय परं प्रति बोधयितुं पञ्चावयववाक्यं प्रयुङ्क्ते तत्परार्थानुमानम्। यथा पर्वतो वह्निमान्, धूमवत्त्वात्, यो यो धूमवान् स स वह्निमान्, यथा महानसः, तथा चायम्, तस्मात्तथेति। अनेन प्रतिपादिताल्लिङ्गात् परोप्यग्निं प्रतिपद्यते ॥

यत्त्विति ॥ पुनः जो आप धूमसे अग्निकी अनुमिति करके परके प्रतिबोधन करनेको याने जतानेवास्ते पञ्चावयववाक्यका प्रयोग करना उसीका नाम परार्थानुमान है। पर्वतेति ॥ यह पर्वत वन्हिवाला है, धूमवाला होनेसे, महानसवत् इत्यादि पञ्चअवयव हैं सो इन पांचों अवयवों करके युक्त जो वाक्य है उस वाक्यका नाम पञ्चाऽवयववाक्य है। अनेनेति॥ इस पञ्चावयववाक्य करके प्रतिपादन किया जो लिङ्ग है उस लिङ्ग करके दूसरेके प्रतिभी अग्निको पर्वतमें सिद्ध कर सक्ता है ॥

प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि पञ्चावयवाः । पर्वतो वह्निमानिति प्रतिज्ञा । धूमवत्त्वादिति हेतुः । यो यो धूमवानित्युदाहरणम् । तथाचायमित्युपनयः । तस्मात्तथेति निगमनम् । स्वार्थानुमितिपरार्थानुमित्योर्लिङ्गपरामर्श एव करणम् । तस्माल्लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम् ॥

प्रतिज्ञेति ॥ प्रतिज्ञा १, हेतु २, उदाहरण ३, उपनय ४, निगमन ५, यह पांच अवयवोंके नाम हैं अब पांचों अवयवोंके लक्षणोंको दिखाते हैं । " **साध्यवत्तया पक्षवचनं प्रतिज्ञा** " साध्यवत्ता करके जो पक्षका प्रतिपादक वचन है उसका नाम प्रतिज्ञा है । **पर्वतो वन्हिमानिति** ॥ पर्वत अग्निवाला है यह साध्य जो वन्हि तद्वत्ता करके पर्वतको प्रतिपादन करता है याने अग्निवाला करके पर्वतको कथन करता है इसवास्ते यह प्रतिज्ञावचन है । "**पञ्चम्यन्तप्रतिपादकं वचनं हेतुः**" पञ्चम्यन्तका अर्थात् पञ्चमी विभक्ति है अन्तमें जिसके उसका प्रतिपादन करनेवाला जो वचन है उसका नाम हेतुवचन है । "धूमवत्त्वात् " इसके अन्तमें पञ्चमी है तिसका प्रतिपादक यह वचन है इसवास्ते यह हेतुवचन है। " **व्याप्तिप्रतिपादकं दृष्टान्तवचनं उदाहरणं** " व्याप्तिका प्रतिपादक अर्थात् कथन करनेवाला जो दृष्टान्तवचन है उसका नाम उदाहरणवचन है। " **यो यो धूमवान् स स वह्निमान् । यथा महानसम्** " वन्हिधूमकी सहचारनियमरूपी जो व्याप्ति उसके दृष्टान्तको प्रतिपादन करनेवाला यह वचन है, जो जो धूमवाला है सो सो वन्हिवाला है, जैसे महानस धूमवालीभी है और वन्हिवालीभी है इस लिये यह दृष्टान्तवचन है । " **पक्षधर्मताज्ञानार्थं**

वचनं उपनयः " पक्षधर्मताज्ञानके वास्ते जो वचन है उसका नाम उपनय है " **तथा चायं** " तैसे यह पर्वतभी धूमवाला है वन्हिवाला होगा, यह उपनयवचन है " **पक्षे साध्योपसंहारवचनं निगमनम्** " पक्षमें साध्यके उपसंहार याने घटानेका जो वचन है उसका नाम निगमन है । **तस्मात्तथेति**॥ वन्हिका व्याप्य जो धूम उस धूमवाला होनेसे यह पर्वतभी वन्हिवाला है । **स्वार्थानुमितीति** ॥ स्वार्थानुमिति और परार्थानुमितिमें लिंगपरामर्श अर्थात् लिङ्गका ज्ञान जो है सोई कारण है । **तस्मादिति** ॥ तिस कारणसे लिङ्गपरामर्शका नामही अनुमान है ॥

लिङ्गं त्रिविधम् । अन्वयव्यतिरेकि केवलान्वयि केवलव्यतिरेकि चेति । अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्तिमदन्वयव्यतिरेकि । यथा वह्नौ साध्ये धूमवत्त्वम् । यत्र धूमस्तत्राग्निः यथा महानसमित्यन्वयव्याप्तिः । यत्र वह्निर्नास्ति तत्र धूमोपि नास्ति यथा महाह्रदः इति व्यतिरेकव्याप्तिः ॥

लिङ्गं त्रिविधमिति ॥ लिङ्ग नाम हेतुका है सो हेतु तीन प्रकारका है । **अन्वयव्यतिरेकीति** ॥ एक तो अन्वयव्यतिरेकि है, दूसरा केवलान्वयि है, तीसरा केवलव्यतिरेकि है । **अन्वयेनेति** ॥ अन्वय करके व्यतिरेक करके जो हेतु व्याप्तिवाला होवे उस हेतुका नाम अन्वयव्यतिरेकि है । **यथेति** ॥ जैसे वह्निरूप साध्यमें धूमवत्त्व हेतु है. " **पर्वतो वह्निमान् धूमात्** " इस अनुमितिमें जो धूम हेतु है सो अन्वयव्यतिरेकि है क्योंकि हेतु और साध्यकी जो व्याप्ति है सो अन्वयव्याप्ति है अर्थात् भावोंकी व्याप्तिका नाम अन्वयव्याप्ति है सो भावोंकी

व्याप्तिमें हेतुका प्रथम ग्रहण होता है,जैसे "यत्र धूमः तत्राग्निः यथा महानसम्" यह भावोंकी व्याप्ति है इसमें हेतु जो धूम उसका पूर्व ग्रहण है इसीका नाम अन्वयव्याप्ति है और हेतुसाध्यके अभावोंकी व्याप्तिका नाम व्यतिरेकव्याप्ति है सो अभावोंकी व्याप्तिमें भावोंकी व्याप्तिसे उलटा है याने साध्यके अभावका पूर्व ग्रहण होता है, हेतुके अभावका पश्चात् ग्रहण होता है. जैसे "यत्र वह्निर्नास्ति तत्र धूमोपि नास्ति यथा महाह्रदः" जहां पर वह्नि नहीं है तहां पर धूमभी नहीं है जैसे जलके तालावमें वह्नि नहीं है धूमभी नहीं है इस व्याप्तिमें वह्निके अभावका पूर्व ग्रहण है धूमाभावका पश्चात्,और भावोंकी व्याप्तिमें हेतु व्याप्य होता है साध्य व्यापक होता है परंतु अभावोंकी व्याप्तिमें उससे उलटा होता है अर्थात् साध्यका अभाव व्याप्य होता है हेतुका अभाव व्यापक होता है सो धूम हेतु जो है सो अन्वयव्यतिरेकी है क्योंकि दोनों करके युक्त है ॥

अन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयि । यथा घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात् पटवत् । अत्र प्रमेयत्वाभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिर्नास्ति सर्वस्य प्रमेयत्वादभिधेयत्वाच्च ॥

अन्वयमात्रव्याप्तिकमिति ॥ अन्वयमात्र हो व्याप्ति जिस हेतुकी उसका नाम है केवलान्वयि । यथेति ॥ जैसे "घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात् पटवत्" इस अनुमानमें घट पक्ष है, अभिधेय साध्य है, प्रमेयत्व हेतु है, पटवत् दृष्टांत है सो पटमें प्रमेयत्व हेतु है अभिधेयत्व साध्यभी है. प्रमेयत्व नाम है ज्ञानके विषयका और अभिधेयत्व नाम है नामके विषयका, सो पट ज्ञानका विषयभी है और नामका विषयभी है घटभी

ज्ञानका विषय है इसकोभी नामका विषय मानो अब यहां पर प्रमेयत्व हेतु जो है सो केवलान्वयि है क्योंकि हेतुसाध्यकी व्याप्तिका दृष्टांत पटमें मिलता है और इस हेतुकी व्यतिरेक-व्याप्तिका दृष्टांत अर्थात् जहां जहां अभिधेयत्व नहीं है तहां तहां प्रमेयत्वभी नहीं है ऐसा दृष्टांत नहीं मिलता क्योंकि संपूर्ण प्रपंचको प्रमेयत्व और अभिधेयत्व होनेसे उससे बाहर तो कोईभी पदार्थ नहीं है जिसका कि ऐसा दृष्टांत दिया जावे जो उसमें अभिधेयत्व नहीं प्रमेयत्वभी नहीं इसीसे यह हेतु केवलान्वयि है॥

व्यतिरेकमात्रव्याप्तिकं केवलव्यतिरेकि । यथा पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात्, यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद्गन्धवत्, यथा जलम्, न चेयं तथा, तस्मान्न तथेति । अत्र यद्गन्धवत्तदितरभिन्नमित्यन्वयदृष्टान्तो नास्ति पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वात् ॥

व्यतिरेकेति ॥ व्यतिरेकमात्र होवे व्याप्ति जिस हेतुकी उसका नाम केवलव्यतिरेकि है "यथा पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात्, यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद्गन्धवत्, यथा जलम्" पृथिवी जो है सो इतर जो जलादिक उनसे भेदको प्राप्त होती है गन्धवाली होनेसे, जो इतरोंसे अर्थात् जलादिकोंसे भेदवाला नहीं है वह गन्धवालाभी नहीं है, जैसे जलादिक जलादिकोंसे भेदवाले नहीं हैं वह गन्धवालेभी नहीं हैं । न चेयं तथेति ॥ "इयं पृथिवी गन्धाभाववती न" यह पृथिवी गन्धके अभाववाली नहीं है। तस्मान्न तथेति॥ "गन्धाभावाभाववत्त्वात् गन्धाभाववती न" अर्थात् गंधाभावाभाववाली होनेसे याने गन्धके अभावका अभाव गन्ध हुई तिस गन्धवाली होनेसे गन्धके अभाववाली नहीं है, अब इस अनुमानमें पृथिवी

पक्ष है, इतरभेद साध्य है, गन्धवत्त्व हेतु है सो यह गन्धवत्त्वहेतु केवलव्यतिरेकी है क्योंकि यहां पर अभावोंकी व्याप्तिका दृष्टांत मिलता है, जहां पर इतरभेद नहीं है (जलादिकोंमें) वहां पर गन्धभी नहीं है और भावोंकी जो व्याप्ति है याने हेतुसाध्यकी व्याप्ति अर्थात् गन्धहेतु और इतरभेदसाध्यकी व्याप्तिका दृष्टान्त नहीं मिलता क्योंकि गन्ध तो पृथिवीमेंही रहती है सो पृथिवीमात्रको तो पक्ष कर लिया और पृथिवीको छोडकर जलादिकोंमें तो गन्ध रहती नहीं इस वास्ते अन्वयदृष्टांत नहीं बनता इस लिये यह हेतु केवलव्यतिरेकि है ॥

संदिग्धसाध्यवान् पक्षः । यथा धूमवत्त्वे हेतौ पर्वतः। निश्चितसाध्यवान् सपक्षः । यथा तत्रैव महानसम् । निश्चितसाध्याभाववान् विपक्षः।यथा तत्रैव महाह्रदः ॥

संदिग्धेति ॥ संदिग्धसाध्यवाला जो होवे उसका नाम पक्ष है । **यथेति** ॥ जैसे धूमवत्त्व हेतुमें अर्थात् जिस अनुमितिमें धूमको हेतु किया है, और वह्नि साध्य है, पर्वत पक्ष है वह पर्वत संदिग्धसाध्यवाला है क्योंकि पर्वतमें प्रथम साध्यका संदेह होता है । **निश्चितेति** ॥ निश्चितसाध्यवाला जो होवे अर्थात् जिसमें साध्यका निश्चय होवे उसका नाम सपक्ष है । **यथेति** ॥ जैसे तिसी अनुमानमें महानस जो दृष्टान्त है सो निश्चितसाध्यवाला है क्योंकि महानस(रसोईका स्थान)जो है उसमें अग्निका निश्चय होता है । **निश्चितसाध्याभावेति** ॥ निश्चित साध्यके अभाववाला विपक्ष है अर्थात् जिसमें अग्निके अभावका निश्चय होवे वही विपक्ष है जैसे जलह्रदमें अग्निके अभावका निश्चय है याने पानीके तालावमें अग्नि नहीं रहती यह सबको निश्चय है इसवास्ते वह विपक्ष है । सद्धेतुका निरूपण कर दिया, अब असद्धे-

तुका निरूपण करते हैं । जो हेतु अपने साध्यको सिद्ध कर सके उसका नाम सद्धेतु है जैसे धूमहेतु जो है सो अपने साध्यको पक्ष जो पर्वत उसमें सिद्ध कर सक्ता है इसवास्ते वह सद्धेतु है और जो हेतु अपने साध्यको सिद्ध नहीं कर सक्ता है उसका नाम असद्धेतु है और उसीका नाम हेत्वाभासभी है सो दिखाते हैं:—

सव्यभिचारविरुद्धसत्प्रतिपक्षासिद्धबाधिताः पञ्च हेत्वाभासाः । सव्यभिचारोऽनैकांतिकः । स त्रिविधः । साधारणाऽसाधारणानुपसंहारिभेदात् । तत्र साध्याभाववद्वृत्तिः साधारणोऽनैकान्तिकः । यथा 'पर्वतो वह्निमान् प्रमेयत्वादिति । प्रमेयत्वस्य वन्ह्यभाववति ह्रदे विद्यमानत्वात् ॥

सव्यभिचारेति ॥ सव्यभिचार १, विरुद्ध २, सत्प्रतिपक्ष ३, असिद्ध ४, बाधित ५, यह पञ्च हेत्वाभास हैं । **सव्यभिचारेति॥** सव्यभिचारको अनैकान्तिकभी कहते हैं । **सेति ॥** सो तीन प्रकारका है. साधारणभेदसे, असाधारणभेदसे, अनुपसंहारिभेदसे। **तत्रेति॥** तीनोंमेंसे जो हेतु साध्यके अभाववालेमें वृत्ति होवे याने जहां पर साध्य न रहे वहां पर रहे वह हेतु साधारणाऽनैकान्तिक होता है "**यथा पर्वतो वह्निमान् प्रमेयत्वात्**" यह पर्वत अग्निवाला है प्रमेयत्ववाला होनेसे, इस अनुमानमें प्रमेयत्व जो हेतु है सो साध्य जो वन्हि उसके अभाववाला जो जलका ह्रद उसमेंभी वृत्ति है क्योंकि जलह्रदभी प्रमाका विषय है इसवास्ते यह साधारणानैकान्तिक है ॥

सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तोऽसाधारणः । यथा शब्दो नित्यः शब्दत्वादिति । शब्दत्वं सर्वेभ्यो नित्ये-

भ्योऽनित्येभ्यश्च व्यावृत्तं शब्दमात्रवृत्ति ॥

सर्वेति ॥ जो हेतु संपूर्ण सपक्ष-विपक्षसे व्यावृत्त होवे अर्थात् सपक्ष-विपक्षमें न रहे वह हेतु असाधारण होता है । **यथेति**॥जैसे शब्द जो है सो नित्य है शब्दत्ववाला होनेसे. अब इस अनुमानमें शब्द पक्ष है,नित्यत्व साध्य है, शब्दत्व हेतु है सो शब्दत्वहेतु करके शब्दका नित्यत्व सिद्ध करने लगे सो शब्दत्वहेतु करके शब्दमें नित्यता सिद्ध नहीं हो सक्ती क्योंकि यह असाधारण हेत्वाभास है क्योंकि शब्दत्व जो हेतु है सो नित्य जो आकाशादिक उनमेंभी नहीं रहता और अनित्य जो घटादिक उनमें भी नहीं रहता किंतु शब्दमात्रमेंही रहता है वह असाधारण है ॥

अन्वयव्यतिरेकदृष्टान्तरहितोऽनुपसंहारी । यथा सर्वमनित्यं प्रमेयत्वादिति । अत्र सर्वस्यापि पक्षत्वात् दृष्टान्तो नास्ति ॥

अन्वयव्यतिरेकेति ॥ जो हेतु अन्वयदृष्टान्त और व्यतिरेकदृष्टान्तसे रहित होवे उसका नाम अनुपसंहारी है । **यथेति** ॥ " **सर्वं अनित्यं प्रमेयत्वात्** " इस अनुमानमें सर्व-शब्द करके संपूर्ण जगत्का ग्रहण है सोई पक्ष है, अनित्यत्व साध्य है, प्रमेयत्व हेतु है अर्थात् सब अनित्य है ज्ञानका विषय होनेसे जब कि सारे जगत्को पक्ष कर लिया तब दृष्टांत तो कोईभी नहीं बनता जहां जहां प्रमेयत्व है तहां तहां अनित्यत्व है ऐसा अन्वयदृष्टान्तभी नहीं बनता और जहां पर अनित्यत्व नहीं है वहां पर प्रमेयत्वभी नहीं है ऐसा व्यतिरेकदृष्टांतभी नहीं । दृष्टांत जो होता है सो पक्षसे बाहर होता है सो पक्षसे बाहर तो कोई वस्तु नहीं है जिसका दृष्टांत दिया जावे इसवास्ते यह अनुपसंहारी है ॥

साध्याभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः । यथा शब्दो नित्यः कृतकत्वादिति । कृतकत्वं हि नित्यत्वाभावेनाऽनित्यत्वेन व्याप्तम् ॥

साध्याभावेति ॥ साध्यके अभाव करके व्याप्त जो हेतु है उसका नाम विरुद्ध है " **यथा शब्दो नित्यः कृतकत्वात्** " शब्द जो है नित्य है कृतकत्व याने कार्य होनेसे अब इस जगामें कृतकत्वहेतु करके शब्दमें नित्यत्व सिद्ध करने लगे सो कृतकत्व जो हेतु है सो नित्यत्वसाध्यका अभाव जो अनित्यत्व उस करके व्याप्त है अर्थात् जहां जहां कृतकत्व है तहां तहां अनित्यत्व है इसवास्ते यह हेतु विरुद्ध है ॥

यस्य साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं विद्यते स सत्प्रतिपक्षः । यथा शब्दो नित्यः श्रावणत्वाच्छब्दत्ववदिति, शब्दोऽनित्यः कार्यत्वात् घटवदिति ॥

यस्य हेतोरिति ॥ जिस हेतुका जो साध्य उस साध्यके अभावका साधक याने सिद्ध करनेवाला दूसरा हेतु विद्यमान होवे उस हेतुका नाम सत्प्रतिपक्ष है " **यथा शब्दो नित्यः श्रावणत्वात् शब्दत्ववत्** " शब्द जो है सो नित्य है श्रावण होनेसे याने श्रोत्रइन्द्रिय करके ग्रहण होनेसे " **शब्दोऽनित्यः कार्यत्वात् घटवत्** " शब्द जो है सो अनित्य है कार्य होनेसे घटकी नाईं याने अनुमानमें श्रावणत्वहेतुका साध्य नित्यत्व है उस नित्यत्वका अभाव जो अनित्यत्व उस अनित्यत्वका सिद्ध करनेवाला दूसरे अनुमानमें कार्यत्वहेतु विद्यमान है इसवास्ते श्रावणत्वहेतु सत्प्रतिपक्ष है ॥

असिद्धस्त्रिविधः । आश्रयासिद्धः स्वरूपासिद्धो व्याप्यत्वासिद्धश्चेति । आश्रयासिद्धो यथा । गग-

नारविन्दं सुरभि अरविन्दत्वात् सरोजारविन्द-
वत् । अत्र गगनारविन्दमाश्रयः स च नास्त्येव ॥

असिद्धस्त्रिविधेति ॥ असिद्ध तीन प्रकारका है. एक तो आश्रयाऽसिद्ध है, दूसरा स्वरूपाऽसिद्ध है, तीसरा व्याप्यत्वाऽसिद्ध है । आश्रयाऽसिद्ध इति ॥ " यथा गगनारविन्दं सुरभि अरविन्दत्वात् " गगनमें जो अरविन्द है सो सुगन्धिवाला है अरविन्दत्वजातिवाला होनेसे "सरोजारविन्दवत्" तालाव के अरविन्दकी नाईं, अरविन्द नाम कमलका है जैसे तालावके कमलमें अरविन्दत्वजाती है और सुगन्धिभी है तैसे आकाशके अरविन्दमेंभी अरविन्दत्वजाति है उसकोभी सुगन्धिवाला मानो अब यहां पर अरविन्दत्वहेतुकरके गगनारविन्दमें सुरभि सिद्ध करने लगे, कहते हैं कि यह हेतु आश्रयाऽसिद्ध है अर्थात् अरविन्दत्वहेतुका आश्रय जो गगनारविन्द सो तो हैही नहीं क्यौंकि गगनमें तो अरविन्द होताही नहीं है तब अरविन्दत्व उसमें कैसे रहेगा किंतु नहीं रह सक्ता विनाश्रयके, इसवास्ते गगनारविन्दत्व आश्रयाऽसिद्धहेतु है ॥

स्वरूपाऽसिद्धो यथा । शब्दो गुणश्चाक्षुषत्वात् । अत्र चाक्षुषत्वं शब्दे नास्ति, शब्दस्य श्रावणत्वात् ॥

स्वरूपाऽसिद्धेति ॥ जो हेतु स्वरूपसेही असिद्ध हो उसका नाम स्वरूपाऽसिद्ध है । यथेति ॥ " यथा शब्दो गुणः चाक्षुषत्वात् " शब्द जो है सो गुण है चाक्षुष होनेसे अर्थात् चक्षुइन्द्रियका विषय होनेसे अब इस अनुमानमें जो चाक्षुषत्वहेतु है उस चाक्षुषत्वहेतु करके शब्दमें गुणत्व सिद्ध करने लगे सो शब्दमें चाक्षुषत्वहेतु स्वरूपसेही नहीं है क्योंकि

शब्दको श्रावणत्व-होनेसे अर्थात् श्रोत्रइन्द्रिय करके ग्राह्य होनेसे यह हेतु स्वरूपाऽसिद्ध है ॥

सोपाधिको हेतुर्व्याप्यत्वाऽसिद्धः । साध्यव्यापकत्वे सति साधनाऽव्यापकत्वमुपाधिः । साध्यसमानाधिकरणाऽत्यन्ताभावाऽप्रतियोगित्वं साध्यव्यापकत्वम् । साधनवन्निष्ठाऽत्यन्ताभावप्रतियोगित्वं साधनाऽव्यापकत्वम् । पर्वतो धूमवान् वह्निमत्त्वादित्यत्र आर्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः । तथाहि, यत्र धूमस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोग इति साध्यव्यापकता । यत्र वह्निस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोगो नास्ति, अयोगोलके आर्द्रेन्धनसंयोगाभावादिति साधनाऽव्यापकता । एवं साध्यव्यापकत्वे सति साधनाऽव्यापकत्वादार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः।सोपाधिकत्वाद्वह्निमत्त्वं व्याप्यत्वाऽसिद्धम् ॥

सोपाधिको हेतुरिति ॥ उपाधिके सहित जो हेतु है उस हेतुका नाम व्याप्यत्वाऽसिद्ध है । साध्यव्याकत्वे सतीति ॥ जो साध्यका व्यापक हो और साधन जो हेतु उसका अव्यापक हो उसका नाम है उपाधि । साध्यसमानाधिकरणेति ॥ साध्यके समानाधिकरण जो अत्यन्ताभाव अर्थात् साध्यके साथ एक अधिकरणमें रहनेवाला जो अत्यन्ताभाव उस अत्यन्ताभावका जो अप्रतियोगित्व उसीका नाम साध्यव्यापकत्व है । साधनवन्निष्ठेति ॥ साधन नाम हेतुका है हेतुवालेमें जो अत्यन्ताभाव उस अत्यन्ताभावका जो प्रतियोगित्व उसका नाम साधनाऽव्यापकत्व है सो दिखाते हैं:— "पर्वतो धूमवान् वह्निमत्त्वात्" यहां पर पर्वत पक्ष है, धूम साध्य है, वह्नि हेतु है

सो वह्निरूप जो हेतु है सो सोपाधिक हेतु है क्योंकि यहां आ-र्द्रेन्धनसंयोग उपाधि है उस उपाधि करके यह हेतु युक्त है साध्य जो धूम उसका अधिकरण पर्वत है सो धूमरूप साध्यके साथ एक अधिकरण जो पर्वत उस पर्वतमें घटका अत्यन्ताभाव है उस अत्यन्ताभावका प्रतियोगि हुवा घट, अप्रतियोगी हुवा आर्द्रे-न्धनसंयोग सो आर्द्रेन्धनसंयोग धूमरूप साध्यका व्यापक है इसीका नाम साध्यव्यापकता है और इसी अनुमानमें हेतु जो वन्ही है वह रहा अयोगोलकमें याने तपे हुवे लोहपिण्डमें उसी अयोगो-लकमें आर्द्रेन्धनसंयोगका अत्यन्ताभावभी है क्योंकि आर्द्रेन्धन-संयोग, वहां पर नहीं है उस अभावका प्रतियोगी हुवा आर्द्रेन्ध-नसंयोग, इसवास्ते आर्द्रेन्धनसंयोगही साधनका अव्यापकभी है सो आर्द्रेन्धनसंयोगही उपाधि हुवा । तथाहीति ॥ " यत्र धूमः " जहां पर धूम है वहां पर आर्द्रेन्धनसंयोग है आर्द्रेन्धन नाम है गीली लकडीका सो विना गीली लकडीके (आर्द्रेन्धनसं-योगके) धूम नहीं होता इसवास्ते आर्द्रेन्धनसंयोगकोही साध्यव्या-पकता है । यत्रेति ॥ जहां पर वन्हि है तहां पर आर्द्रेन्धनसंयोग नहीं है अयोगोलकमें विनाही आर्द्रेन्धनसंयोगके वन्हि है इसीसे उसको साधनकी अव्यापकताभी है एवं साध्यका व्यापक होनेसे और साधनका अव्यापक होनेसे आर्द्रेन्धनसंयोगही उपाधि हुई इसी उपाधि करके सोपाधिक होनेसे वन्हिमत्त्व जो हेतु है सो व्याप्यत्वासिद्ध है ॥

यस्य साध्याभावः प्रमाणान्तरेण निश्चितः स बाधि-तः । यथा वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वात् इति । अत्रानु-ष्णत्वं साध्यं तदभाव उष्णत्वं स्पर्शनप्रत्यक्षेण गृ-ह्यते इति बाधितत्वम् ॥ ॥ अनुमानखण्डं समाप्तम् ॥ २ ॥

यस्य साध्याभाव इति ॥ जिस हेतुके साध्यका अभाव प्रमाणान्तर करके याने प्रत्यक्षप्रमाण करके निश्चित हो सो हेतू बाधित होता है । यथेति ॥ "वह्निः अनुष्णः द्रव्यत्वात्" वह्नि अनुष्ण है याने गरम नहीं है द्रव्यत्ववाली होनेसे अब यहां पर द्रव्यत्वहेतुसे अग्निमें अनुष्णत्व सिद्ध करने लगे सो यह द्रव्यत्व हेतु बाधित है क्योंकि द्रव्यत्वहेतुका साध्य है अनुष्णत्व, उसका अभाव हुवा उष्णत्व सो उष्णत्व अग्निमें प्रत्यक्षस्पर्श करकेही ग्रहण होता इसवास्ते यह बाधित हेतु है यहभी अपने साध्यकी सिद्धि नहीं कर सक्ता ॥

इति तर्कसंग्रहे भाषाटीकायाम् अनुमान-
खण्डः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ उपमानखण्डम् ।

उपमितिकरणमुपमानम् । संज्ञासंज्ञिसम्बन्धज्ञानमुपमितिः । तत्करणम् उपमानम् । अतिदेशवाक्यार्थस्मरणमवान्तरव्यापारः । तथाहि । गवयशब्दवाच्यमजानन् कुतश्चिदारण्यकपुरुषाद्गोसदृशो गवय इति श्रुत्वा वनं गतो वाक्यार्थं स्मरन् गोसदृशं पिण्डं पश्यति । तदनन्तरमसौ गवयशब्दवाच्य इत्युपमितिरुत्पद्यते ॥

इति तर्कसंग्रहे उपमानखण्डं समाप्तम् ॥ ३ ॥

उपमितीति ॥ उपमितिका जो करण होवे उसका नाम उपमान है । संज्ञासंज्ञीति ॥ यहां पर संज्ञा करके पदका ग्रहण है और संज्ञि करके अर्थका ग्रहण है अर्थात् नाम और ना-

मीके सम्बन्धका जो ज्ञान है याने वाच्यवाचकभावरूप ज्ञान उसीका नाम उपमिति है । **तत्करणमिति** ॥ तिस उपमिति-ज्ञानका करण सादृश्यज्ञान है । **अतिदेशेति** ॥ और अतिदेश याने उपदेशकके वाक्यके अर्थका जो स्मरण है सो उपमिति-में अवांतर व्यापार है । **तथाहीति** ॥ दिखाते हैं । **गवयेति**॥ नगरनिवासी कोई पुरुष गवय इस शब्दका वाच्य जो गवयकी व्यक्ति है याने गवयका शरीर है उसको न जानता हुवा उसने किसी वनके रहनेवाले पुरुषसे पूछा, गवय कैसा होता है ? उसने कहा " **गोसदृशो गवयः** " गौके सदृश गवय होता है ऐसे उसके वाक्यको श्रवण करके किसी दिन वह वनमें गया तब उस वनवासी पुरुषके वाक्यके अर्थको स्मरण करता हुवा गौ-के सदृश गवयकी व्यक्तिको वह देखता भया । "**तदनन्तरं**" स्मरणके पश्चात् वहही व्यक्ति गवयपदकी वाच्य है ऐसी उप-मिति उसको उत्पन्न होती भई सो इस उपमितिमें गौकी व्यक्तिकी जो गवयमें सदृशता (किसी अंशमें तुल्यता) उस तुल्यताका जो ज्ञान है वही उपमितिमें करण है और गवय यह जो संज्ञा है याने नाम है और गवयकी व्यक्ति जो संज्ञि है अर्थात् नामका अर्थ है उन दोनोंका जो वाच्यवाचकभावसम्बन्ध है उस सम्बन्धका जो ज्ञान है यह तो उपमिति हुई, तिस उपमितिका करण हुवा सादृश्यताका ज्ञान, उसीका नाम उपमानज्ञान हुवा ॥

इति तर्कसंग्रहे भाषाटीकायाम् उपमा-नखण्डं समाप्तम् ॥ ३ ॥

अथ शब्दखण्डम् ।

आप्तवाक्यं शब्दः । आप्तस्तु यथार्थवक्ता । वाक्यं पदसमूहः । यथा गामानयेति। शक्तं पदं। अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरसंकेतः शक्तिः ॥

आप्तवाक्यमिति॥ आप्तवाक्यका नाम शब्द है याने शब्द प्रमाण है । **आप्तस्त्विति ॥** आप्त नाम यथार्थवक्ताका है अर्थात् सत्यवादीको आप्त कहते हैं । **वाक्यमिति ॥** पदोंके समुदायका नाम वाक्य है । **यथेति ॥** "गामानय" गौको ले आवो यह वाक्य है इसमें गो-पद है, अम्-पद है, आनय-पद है इनका समुदायरूपही यह वाक्य है । **शक्तमिति ॥** शक्ति करके युक्तका नाम पद है अर्थात् जिसमें अर्थके बोधन करनेकी सामर्थ्य है उसीका नाम पद है अब शक्तिके लक्षणको दिखाते हैं " **अर्थस्मृत्यनुकूलः पदपदार्थसम्बन्धः शक्तिः** " पदार्थकी स्मृतिका जनक जो पद और पदार्थका सम्बन्ध है उसीका नाम शक्ति है उस शक्तिको मीमांसक पदार्थांतर मानता है उसके मतके खण्डन करने वास्ते मूलकारने कहा है " **अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरसंकेतः शक्तिः** " इस पदसे इसी अर्थका बोध हो ऐसी ईश्वरकी इच्छा याने संकेतका नाम शक्ति है पदार्थान्तर नहीं है अर्थात् घट इस पदसे कंबुग्रीवादिवाली व्यक्तिकाही बोध हो पटका न हो ऐसी जो ईश्वरकी इच्छा है उसीका नाम शक्ति ॥ ननु जातिमें शक्ति है व्यक्तिमें शक्ति नहीं है क्योंकि विशेषणरूप करके जातिकीही प्रथम उपस्थिति होती है और व्यक्तिका लाभ आक्षेपसे हो जाता है ॥ उ०—" **गामानय** " अर्थात् जहां कहा, गौको लावो. वहां पर

गौकी व्यक्तिकाही लाना बन सक्ता है जातिका लाना नहीं बनता इसवास्ते जातिविशिष्टव्यक्तिमेंही शक्ति है जातिमें नहीं है जैसे शक्ति पदवृत्ति है याने पदमें रहती है तैसे लक्षणाभी पदवृत्ति है जैसे शक्ति करके पदार्थका बोध होता है तैसे लक्षणा करके-भी पदार्थका बोध होता है इसवास्ते लक्षणाभी शब्दमें रहती है। अब लक्षणावृत्तिको दिखाते हैं । " **शक्यसम्बन्धो हि लक्षणा** " शक्यके साथ सम्बन्ध होनेका नामही लक्षणा है " **गङ्गायां घोषः** " गंगामें घोष है अर्थात् किसीने कहा गंगामें हीरोंका ग्राम है. घोष नाम हीरोंके ग्रामका है और शक्तिका जो आश्रय होवे उसका नाम शक्य है, अब यहां पर विचार करना चाहिये, गंगापदकी शक्ति गंगाके प्रवाहमें है सो प्रवाहमें तो ग्रामका होना असंभव है इसवास्ते गंगापदकी तीरमें लक्षणा करनी गंगापदका शक्य जो प्रवाह उसका सम्बन्ध है तीरके साथ, सो गंगाके तीरमें घोष है ऐसा बोध लक्षणा करके होता है शक्ति करके नहीं होता इसवास्ते लक्षणावृत्ति पदमें शक्तिवृत्तिसे भिन्न है और जब कि कोई भोजन करने बैठा है और उसने भृत्यसे कहा " **सैन्धवमानय** " अर्थात् सैन्धवको लावो अब यहांपर सैन्धव नाम लवणकाभी है और सैन्धव नाम अश्वकाभी है औरभी बहुतसे पदार्थोंका सैन्धव नाम है इसवास्ते सैन्धवपदमें नाना अर्थके बोधनकी शक्ति है तब किसको लाना चाहिये सो प्रकरणसे यहां पर सैन्धवपदकी लवणमेंही लक्षणा करनी क्योंकि भोजनके समय लवणकीही जरूरत है अश्वकी नहीं और जब कि वस्त्रोंको पहरकर कहीं जानेको तैयार होकर " **सैन्धवमानय** " कहे तब सैन्धवपदकी अश्वमें लक्षणा करनी प्रकरणसे, क्योंकि उस समय अश्वकी जरूरत है लवणकी

नहीं सो लक्षणा तीन प्रकारकी है एक तो जहत्‌लक्षणा है, दूसरी अजहत्‌लक्षणा, तीसरी जहदजहत्‌लक्षणा है तीनोंमेंसे प्रथम जहत्‌लक्षणाको दिखाते हैं । " यत्र वाच्यार्थस्यान्वयाभावस्तत्र जहदिति " जहां पर पदका अपने वाच्यार्थके साथ अन्वय न होवे वहां पर जहत्‌लक्षणा होती है जैसे किसीने कहा " मंचाः क्रोशन्ति " जो कि खेतोंमें पक्षियोंके उडानेवास्ते मंचान बांधा जाता उस मंचानका नाम मंच है अब किसीने कहा मंच पुकारते हैं तब मंचमें तो पुकारना बनता नहीं क्योंकि वह तो जड है इसवास्ते इस स्थलमें मंचपदकी मंचस्थपुरुषमें लक्षणा करनी अर्थात् मंचस्थपुरुष पुकारता है मंचपदका वाच्य है मंचान उसके साथ पुकारने-पदका सम्बन्ध नहीं हो सक्ता इसवास्ते इसका नाम जहत्‌लक्षणा है। दूसरी अजहत्‌लक्षणाको दिखाते हैं। "यत्र वाच्यार्थस्याप्यन्वयस्तत्राजहत्‌लक्षणा" जहां पर वाच्यके अर्थकाभी अन्वय होवे उसका नाम अजहत्‌लक्षणा है " यथा छत्रिणो गच्छन्ति " जैसे छातोंवाले गमन करते हैं अर्थात् दस छातोंवाले हैं और विना छातोंके हैं, अब यहां पर छत्रीपदका जो वाच्य अर्थ (छातेवाला) है उसकी विना छातोंवालेके साथ इकट्ठा चलनेमें लक्षणा है अर्थात् छातोंवाले और विना छातोंवाले दोनों जा रहे हैं इस स्थलमें छत्रीपदके वाच्यार्थकाभी अन्वय है इसवास्ते यह अजहत्‌लक्षणा है। अब तीसरीको दिखाते हैं " यत्र वाच्यार्थैकदेशत्यागेनैकदेशान्वयः तत्र जहदजहल्लक्षणा " जहां पर वाच्यार्थके एकदेशका त्याग होकर एकदेशके साथ अन्वय होवे तहां पर जहदजहत्‌लक्षणा होती है जैसे "तत्त्वमसि " इस वाक्यमें तत्पदका वाच्य जो सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ईश्वर और त्वंपदका

वाच्य जो अल्पज्ञत्वादिविशिष्ट जीव दोनोंका एक देश जो सर्वज्ञत्व और अल्पज्ञत्व उनका त्याग करके और दोनोंका एकदेश जो शुद्धचेतन उनका अभेदअन्वय होता है इसीका नाम जहदजहत्-लक्षणा है और " तात्पर्यानुपपत्तिर्लक्षणाबीजं " जहां पर तात्पर्यकी अनुपपत्ति हो वहां परही लक्षणा होती है इसवास्ते तात्पर्यानुपपत्ति लक्षणामें बीज है सो " गंगायां घोषः" यहां पर गंगामें घोष कहनेका तात्पर्य नहीं इसीवास्ते लक्षणा होती है। शक्तिलक्षणाका निरूपण कर दिया ॥

आकाङ्क्षायोग्यतासन्निधिश्च वाक्यार्थज्ञानहेतुः । पदस्य पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्तान्वयाऽननुभावकत्वमाकाङ्क्षा । अर्थाबाधो योग्यता ॥

आकाङ्क्षेति ॥ आकाङ्क्षा, योग्यता, सन्निधि ये तीनों वाक्यके अर्थज्ञानमें हेतु हैं । **पदस्येति** ॥ पदनिष्ठ पदान्तरका जो व्यतिरेक याने अभाव उस अभाव करके युक्त जो पद उसके अन्वयबोधकी जो अजनकता है उसीका नाम आकाङ्क्षा है सो दिखाते हैं, जैसे " **गामानय** " इस वाक्यमें जो गो-पद है उस गोपदके आगे जब कि अम्-पदका अभाव है तब उस अभाव करके युक्त हुवा गो-पद अब केवल गोपदके उच्चारण करनेसे श्रोताको गोपद कुछभी अन्वयका बोध नहीं कर सक्ता इसवास्ते गो-पदको अम्-पदकी आकाङ्क्षा है और अम्-पदको आनय-पदकी आकाङ्क्षा है । **अर्थाबाधेति** ॥ जहां पर अर्थका अबाध हो याने बाधा न हो उसका नाम योग्यता है जैसे " **जलेन सिञ्चति** " जल करके सिञ्चन करता है यहां पर अर्थका बाध नहीं है क्योंकि जल करके सिञ्चनकी योग्यता है ॥

पदानामविलम्बेनोच्चारणं सन्निधिः । आकांक्षा-

दिरहितं वाक्यमप्रमाणम् । यथा गौरश्वः पुरुषो हस्तीति न प्रमाणम्,आकाङ्क्षाविरहात् । अग्निना सिञ्चेदिति न प्रमाणम्, योग्यताविरहात् । प्रहरे प्रहरे असहोच्चारितानि गामानयेत्यादिपदानि न प्रमाणम्, सान्निध्याभावात् ॥

" पदानामविलम्बेनोच्चारणं सन्निधिः " पदोंका अविलम्ब करके जो उच्चारण करना है उसका नाम है सन्निधि जैसे " गामानय" यहां पर गो-पदसे उत्तर तुरंत अम्-पदका उच्चारण अम्-पदसे उत्तर तुरंत आनय-पदका उच्चारण करना याने मध्यमें क्षणोंका व्यवधान न होना इसीका नाम सन्निधि है । आकाङ्क्षादीति ॥ आकाङ्क्षाआदिकोंसे रहित जो वाक्य है उसको प्रमाणता नहीं है । यथेति ॥ जैसे "गौः अश्वः पुरुषो हस्ती " यह वाक्य प्रमाण नहीं है क्योंकि गो-पदको अश्व-पदकी और अश्व-पदको पुरुष-पदकी और पुरुष-पदको हस्ती-पदकी आकांक्षा नहीं है । अग्निना सिञ्चेदिति ॥ अग्नि करके सिञ्चन करता है यह वाक्यभी प्रमाण नहीं है । योग्यताविरहादिति ॥ अग्नि करके सिञ्चन करनेकी योग्यता नहीं है । प्रहरे प्रहरे इति ॥ एक एक प्रहरके पीछे उच्चारण किया हुवा जो शब्द है सो प्रमाण नहीं है क्योंकि उन शब्दोंके वाक्यमें सन्निधिका अभाव है ॥

वाक्यं द्विविधम् । वैदिकं लौकिकं च । वैदिकमीश्वरोक्तत्वात्सर्वमेव प्रमाणम् । लौकिकं त्वाप्तोक्तं प्रमाणम् । अन्यदप्रमाणम् । वाक्यार्थज्ञानं शब्दज्ञानम् । तत्करणं शब्दः ॥

वाक्यमिति ॥ वाक्य दो प्रकारका है एक तो वैदिकवा-

क्य है जो वेदने कहा है, दूसरा लौकिक वाक्य है जो पुरुषों करके कहा जाता है । वैदिकमिति ॥ वैदिकवाक्य जो हैं सो ईश्वर करके उक्त होनेसे संपूर्ण प्रमाण हैं । लौकिकमिति ॥ और जो लौकिकवाक्य है सो आप्त वक्ताका कहा हुआ प्रमाण है और जो पुरुष आप्त वक्ता नहीं है उसका वाक्य प्रमाण नहीं है । वाक्यार्थज्ञानमिति ॥ वाक्यके अर्थका जो ज्ञान है उसी-का नाम शब्दज्ञान है । तत्करणमिति ॥ उस शब्दज्ञानका जो करण है उसका नाम शब्द है ॥

अयथार्थानुभवस्त्रिविधः, संशयविपर्ययतर्कभेदात् । एकस्मिन्धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहि ज्ञानं संशयः । यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वा ॥

अयथार्थानुभवेति ॥ अयथार्थ अनुभव तीन प्रकारका है एक तो संशय है, दूसरा विपर्यय है, तीसरा तर्क है तीनोंमेंसे प्रथम संशयको दिखाते हैं । एकस्मिन्निति ॥ एक धर्मीमें पर-स्पर विरुद्ध नाना धर्मोंको विषय करनेवाला जो ज्ञान है उसका नाम संशय है । यथेति ॥ जैसे दूरसे ठठको देखा तो ऐसा ज्ञान हुआ यह स्थाणु है या पुरुष है, एक धर्मी कौन है ठेठ, उसमें परस्पर विरोधी जो नाना धर्म हैं स्थाणुत्व पुरुषत्व, तिनके सम्ब-न्धको विषय करनेवाला यह ज्ञान है इसवास्ते यह संशयज्ञान है यदि "विरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहि ज्ञानं" इतनाही संश-यका लक्षण करते तब "घटपटौ" इस समूहालम्बन ज्ञानमें अति-व्याप्ति हो जाती क्योंकि यह ज्ञानभी परस्पर विरुद्ध जो घटत्व पटत्व उनके सम्बन्धको विषय करता है इसवास्ते एकस्मिन् कहा तो एकमें यह विषय नहीं करता इसवास्ते अतिव्याप्ति नहीं आती और जो लक्षणमें विरुद्ध-पद न देते किंतु " एकस्मिन्

धर्मिणि नानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहि ज्ञानं " इतनाही लक्षण करते तब "घटो द्रव्यं" इस ज्ञानमें अतिव्याप्ति हो जाती क्योंकि एकधर्मि जो घट है,उसमें नाना धर्म जो घटत्व द्रव्यत्व हैं उनको विषय करनेवाला तो यहभी ज्ञान है परंतु यह संशय नहीं है इसवास्ते विरुद्ध-पद दिया तब अतिव्याप्ति नहीं आती क्योंकि घटत्व द्रव्यत्व परस्पर विरोधी धर्म नहीं हैं और लक्षणमें नाना-पद न देते तब " पटत्वविरुद्धघटत्ववान् " पटत्वका विरोधी जो घटत्व उस घटत्ववाला यह घट है इसमें अतिव्याप्ति हो जाती क्योंकि यह ज्ञानभी पटत्वका विरुद्ध जो घटत्व उस घटत्ववाले घटको विषय करता है, यह संशय नहीं है इसवास्ते नाना-पद दिया सो नाना धर्मोंके सम्बन्धको विषय नहीं करता, अतिव्याप्ति नहीं आती ॥

मिथ्याज्ञानं विपर्ययः । यथा शुक्ताविदं रजतमिति । व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्कः । यथा यदि वह्निर्न स्यात् तर्हि धूमोपि न स्यादिति । स्मृतिरपि द्विविधा । यथार्था अयथार्था च । प्रमाजन्या यथार्था । अप्रमाजन्या अयथार्था ॥

मिथ्याज्ञानमिति ॥ मिथ्याज्ञानका नाम विपर्ययज्ञान है । यथेति ॥ जैसे शुक्तिमें " इदं रजतं" यह ज्ञान विपर्यय है ॥ व्याप्यारोपेणेति ॥ व्याप्यके आरोप करके जहां पर व्यापकका भी आरोप होवे उसका नाम तर्क है । यथेति ॥ यदि यहां पर वह्नि न होती तब धूमभी न होता, वह्निका अभाव व्याप्य है धूमका अभाव व्यापक है इसीका नाम तर्क है, सो तर्क करकेभी वस्तुकी सिद्धि होती है अर्थात् यहां पर धूम है वह्नि अवश्य होगी इस तर्क करकेभी वह्निकी सिद्धि होती है (१)

इसीवास्ते कहाभी है तर्क जो है सो कहीं संशयकोभी दूर करती है। स्मृतिरपीति॥ स्मृतिभी दो प्रकारकी है।यथार्थेति॥ एक तो यथार्थ स्मृति है, दूसरी अयथार्थ स्मृति है । प्रमेति ॥ जो प्रमासे जन्य है याने यथार्थज्ञानसे जन्य जो स्मृति है वह यथार्थ है और जो अप्रमासे जन्य है याने अयथार्थज्ञानसे जन्य जो स्मृति है वह अयथार्थ है ॥

सर्वेषामनुकूलवेदनीयं सुखम् । प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम् । क्रोधो द्वेषः । कृतिः प्रयत्नः । विहितकर्मजन्यो धर्मः । निषिद्धकर्मजन्यस्त्वधर्मः । बुद्ध्यादयोऽष्टौ आत्ममात्रविशेषगुणाः । बुद्धीच्छाप्रयत्ना द्विविधाः । नित्या अनित्याश्च । नित्या ईश्वरस्य । अनित्या जीवस्य ॥

सर्वेषामिति ॥ संपूर्ण पुरुषोंको अपने अनुकूल याने अपनेको हित जानने योग्य हो उसीका नाम सुख है । प्रतिकूलेति ॥ संपूर्ण जीवोंको जो अपने प्रतिकूल हो याने हितके योग्य जानने योग्य न हो उसका नाम दुःख है, इसीवास्ते सुखकी इच्छा सब करते हैं क्योंकि वह सबको हित है और दुःखकी इच्छा कोईभी नहीं करता क्योंकि वह किसीकोभी हित नहीं है । क्रोधेति ॥ क्रोधका नामही द्वेष है, और कृतिका नामही यत्न है । विहितेति ॥ जो वेदविहित कर्मोंसे जन्य हो उसीका नाम धर्म है । निषिद्धेति ॥ जो निषिद्ध कर्मोंसे उत्पन्न हो उसका नाम अधर्म है । बुद्ध्यादयेति ॥ बुद्धि आदिक आठ विशेष गुण आत्मामात्रमें वृत्ति हैं तिन आठोंमेंसे बुद्धि इच्छा प्रयत्न ये तीन नित्यभी हैं और अनित्यभी हैं, ईश्वरके तो तीनों नित्य हैं और जीवात्माके तीनों अनित्य हैं ॥

संस्कारस्त्रिविधः । वेगो भावना स्थितिस्थापकश्चेति । वेगः पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिः । अनुभवजन्या स्मृतिहेतुर्भावना, आत्ममात्रवृत्तिः । अन्यथाकृतस्य पुनस्तदवस्थास्थापकः स्थितिस्थापकः, कटादिपृथिवीवृत्तिः ॥

संस्कारेति ॥ संस्कार तीन प्रकारका है एक वेग है एक स्थितिस्थापक है, एक भावना है वेगत्वजातिवालेका नाम वेग है सो वेग पृथिवी, जल, तेज, वायु और मन इन पांचोंमें रहता है । अनुभवजन्येति ॥ जो अनुभवसे जन्य हो स्मृतिका हेतु हो उसका नाम भावना है, यदि " स्मृतिहेतुः " इतनाही लक्षण करते तब आत्मामें अतिव्याप्ति हो जाती उस अतिव्याप्तिवारणके वास्ते अनुभवजन्या कहा और जो "अनुभवजन्या" इतनाही लक्षण करते तब अनुभवके ध्वंसमें अतिव्याप्ति होती क्योंकि अनुभवका ध्वंसभी अनुभवसे जन्य है इसवास्ते "स्मृतिहेतुः" कहा सो अनुभवध्वंस स्मृतिका हेतु नहीं है अब अतिव्याप्ति नहीं आती । अन्यथाकृतस्येति ॥ अन्यथा कृतका पुनः तिसी प्रकार स्थापनका जो हेतु हो उसका नाम स्थितिस्थापक है सो चटाई आदिक पृथिवीमें रहता है, जैसे चटाईको एक तर्फसे जब खैंचा तब वह पूर्वरूपसे अन्यथाकृत हो गई जब छोडदिया तब पूर्वकी तरह बिछ गई इसी प्रकार आदिपद करके वृक्षकी शाखा लेनी जब कि शाखाको खैंचा तब अन्यथा हो गई जब छोड दिया तब अपने ठिकानेपर पहुंचकर पूर्ववत् हो गई इसीका नाम स्थितिस्थापक है ॥

चलनात्मकं कर्म । ऊर्ध्वदेशसंयोगहेतुरुत्क्षेपणम् । अधोदेशसंयोगहेतुरपक्षेपणम् । शरीरस्य

सन्निकृष्टसंयोगहेतुराकुञ्चनम् । विप्रकृष्टसंयोगहेतुः प्रसारणम् । अन्यत्सर्वं गमनम् । पृथिव्यादिचतुष्टयमनोमात्रवृत्ति ॥

चलनात्मकमिति ॥ चलनरूप क्रियाका नाम कर्म है । ऊर्ध्वदेशसंयोगहेतुरिति ॥ ऊर्ध्वदेशके साथ संयोगका जो हेतु होवे उस कर्मका नाम उत्क्षेपणम् । अधोदेशेति ॥ नीचेवाले देशके साथ जो संयोगका हेतु क्रिया है उसका नाम अपक्षेपण है। शरीरस्येति॥ शरीरके समीप संकोच कर लेनेका हेतु जो कर्म है उसका नाम आकुञ्चन है । विप्रकृष्टेति॥ शरीरके दूर फैला देनेका हेतु जो कर्म है उसका नाम प्रसारण है। अन्यदिति ॥ और बाकीका जितना कर्म है वह सब गमनके अंतर्भूत जान लेना । पृथिव्यादीति ॥ पृथिवी, जल, तेज, वायु, और मन इनमें कर्म रहता है ॥

नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यम् । द्रव्यगुणकर्मवृत्ति । तद्विविधम् । परापरभेदात् । परं सत्ता। अपरं जातिः, द्रव्यत्वादि ॥

नित्यमिति ॥ जो नित्य हो और अनेकोंमें अनुगत हो अर्थात् समवायसम्बन्ध करके रहे उसका नाम सामान्य है । द्रव्येति ॥ वह सामान्य द्रव्य, गुण, कर्ममें रहती है । तत् द्विविधमिति ॥ सो सामान्य दो प्रकारकी है परअपर भेदसे अर्थात् एक तो परसामान्य है, दूसरी अपरसामान्य है । परमिति ॥ परसामान्यका नाम सत्ता है, अपरसामान्यका नाम जाति है। द्रव्यत्वादीति ॥ "अधिकदेशवृत्तित्वं परत्वं" जो अधिकदेशमें रहे उसका नाम परत्व है सो सत्ता अधिकदेश जो द्रव्य, गुण,कर्म इन तीनोंमें वृत्ति होनेसे संपूर्ण जातियोंसे पर है

"अल्पदेशवृत्तित्वमपरत्वं" जो अल्पदेशमें वृत्ति होवे उसका नाम अपर है सो सत्ताकी अपेक्षा करके अल्पदेश जो द्रव्य, गुण, कर्म उनमें वृत्ति होने द्रव्यत्वादिक जो हैं सो अपर हैं अर्थात् द्रव्यत्व द्रव्यमेंही रहता है, गुणत्व गुणमेंही रहता है, कर्मत्व कर्ममेंही रहता है इसीसे यह सब अपरजाती कहाती हैं और द्रव्यत्वादिक जितनी जातियें हैं इनमें परत्व अपरत्व दोनों प्रकारका व्यवहार होता है अर्थात् पृथिवीत्वकी अपेक्षा करके द्रव्यत्व पर है और सत्ताकी अपेक्षा करके द्रव्यत्व अपर है इसी प्रकार घटत्वकी अपेक्षा करके पृथिवीत्व पर है सत्ताकी अपेक्षा करके अपर है सर्वत्र और जातियोंमेंभी इसी प्रकार परत्व-अपरत्व व्यवहार जान लेना ॥

नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्तका विशेषाः । नित्यसम्बन्धः समवायः, अयुतसिद्धवृत्तिः । ययोर्द्वयोर्मध्ये एकमविनश्यदवस्थमपराश्रितमेवावतिष्ठते तावयुतसिद्धौ । अवयवावयविनौ, गुणगुणिनौ, क्रियाक्रियावन्तौ, जातिव्यक्ती, नित्यद्रव्ये चेति ॥

नित्यद्रव्येति॥ जो नित्यद्रव्योंमें रहते हैं और नित्यद्रव्योंके परस्पर भेद करनेवाले हैं उन्हींका नाम विशेष है । "नित्यसम्बन्धः समवायः" जो सम्बन्ध नित्य हो उसीका नाम समवाय है यदि "सम्बन्धः समवायः" इतनाही लक्षण करते तो संबंध तो संयोगभी है उसमें अतिव्याप्ति होती इसवास्ते नित्य-पद दिया वह नित्य नहीं है और जो "नित्यः समवायः" इतनाही लक्षण करते तब आकाशादिकोंमें अतिव्याप्ति हो जाती क्योंकि नित्य तो आकाशादिकभी हैं इसवास्ते सम्बंध-पद दिया अब अतिव्याप्ति नहीं आती है । ययोर्द्वयोरिति ॥ जिन दो

पदार्थोंमेंसे एकके न नाश होनेपर दूसरेके आश्रित होकर रहे वह दोनों अयुतसिद्ध कहाते हैं अर्थात् उन दोनोंका नाम अयुतसिद्ध है " अवयवाऽवयविनौ " अवयव और अवयवी याने कपाल और घट यह दोनों अयुतसिद्ध हैं क्योंकि कपालोंके न नाश होनेपरही घट कपालोंके आश्रित होकर रहता है इसवास्ते यह दोनों अयुतसिद्ध हैं इनका समवायसम्बन्धही होता है, इसी प्रकार गुणगुणीका, क्रियाक्रियावालेका, जाति और व्यक्तिका विशेष और नित्यद्रव्योंकाभी परस्पर समवायसम्बंध है और यह सब अयुतसिद्धभी हैं ॥

अनादिः सान्तः प्रागभावः, उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य । सादिरनंतः प्रध्वंसः, उत्पत्त्यनंतरं कार्यस्य। त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः । यथा भूतले घटो नास्ति । तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽन्योऽन्याभावः । यथा घटः पटो न भवतीति ॥

अनादिरिति ॥ जो अनादि हो याने उत्पत्तिवाला न हो और नाशवाला हो उसका नाम प्रागभाव है । **उत्पत्तेरिति** ॥ उत्पत्तिसे पूर्व कार्यका प्रागभाव होता है अर्थात् जबतक पट बिना नहीं गया है तबतक तन्तुवोंमें पटका प्रागभाव रहता है, कपालोंमें घटका प्रागभाव रहता है वह प्रागभाव उत्पन्न तो नहीं होता परंतु जब पट या घट बन जाता है तब वह नष्ट हो जाता है यदि "अनादिः" इतनाही लक्षण करते तब आकाशादिकोंमें अतिव्याप्ति हो जाती क्योंकि अनादि तो आकाशादिकभी हैं इसवास्ते सान्त कहा वह सान्त नहीं हैं और जो " सान्तः " इतनाही लक्षण करते तब घटादिकोंमें अतिव्याप्ति हो जाती क्योंकि सान्त तो

घटादिकभी हैं इसवास्ते अनादिपद दिया वह अनादि नहीं हैं अब दोष नहीं आता ॥ " सादिरनन्तः प्रध्वंसः " जो उत्पत्तिवाला हो और नाशवाला न हो उसका नाम प्रध्वंसाभाव है जैसे घटका जो ध्वंस है सो घटके फूटनेसे उत्पन्न हुवा है इसवास्ते वह सादि है और उस ध्वंसका फिर ध्वंस नहीं होता इसवास्ते अनन्तभी है यदि " सादिः " इतनाही लक्षण करते तब घटादिकोंमें अतिव्याप्ति हो जाती इसवास्ते अनंतभी कहा और जो " अनन्तः " इतनाही लक्षण करते तब आकाशादिकोंमें अतिव्याप्ति हो जाती इसवास्ते सादि कहा वह सादि नहीं हैं अब अतिव्याप्ति नहीं आती । त्रैकालिकेति ॥ त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्न है प्रतियोगिता जिस अभावकी उसका नाम अत्यन्ताभाव है " यथा भूतले घटो नास्ति " भूतलमें घट नहीं है किंतु घटका अभाव है और जिसका जहां पर अभाव रहता है वह अपने अभावका प्रतियोगि होता है उस प्रतियोगिके ऊपर प्रतियोगिता एक धर्म रहता है जब कि भूतलमें घटका तीनों कालमें अभाव रहा तब त्रैकालिकसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिता हुई अर्थात् तीनों कालोंमें घटके सम्बन्धका जो अभाव है याने सम्बन्ध न होना उसीका नाम अत्यन्ताभाव है। तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न है प्रतियोगिता जिस अभावकी उसका नाम अन्योन्याभाव है। " यथा घटः पटो न भवति " जैसे घट जो है सो पट नहीं है अर्थात् तादात्म्यता करके याने तादात्म्यसम्बन्ध करके घटका पटमें अभाव है और पटका तादात्म्यता करके घटमें अभाव है इस अभावकी प्रतियोगिता तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्ना हुई इसी वास्ते यह अन्योन्याभावभी

तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक हुवा । अभावोंका नि-रूपण समाप्त हुवा ॥

सर्वेषां पदार्थानां यथायथमुक्तेष्वन्तर्भावात्सप्तैव पदार्था इति सिद्धम् ॥

कणादन्यायमतयोर्बालव्युत्पत्तिसिद्धये ।
अन्नम्भट्टेन विदुषा रचितस्तर्कसंग्रहः ॥ १ ॥

इति श्रीअन्नम्भट्टविरचितस्तर्कसंग्रहः समाप्तः ॥

ननु प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रह-स्थान न्यायशास्त्रमें सोलह पदार्थ कहे हैं और उन्हीं पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे मुक्तिकी प्राप्तिभी कही है तब सातही पदार्थ हैं ऐसा कथन नहीं बनता । **सर्वेषामिति** ॥ संपूर्ण षोडश पदार्थोंका सातही पदार्थोंमें अन्तर्भाव है इसवास्ते पदार्थ सातही हैं । **कणादेति** ॥ कणाद और गौतमके मतोंका आश्रयण करके बालकोंके बोधकी सिद्धिके लिये अन्नम्भट्टविद्वान्ने यह तर्कसं-ग्रह रचा है सो समाप्त हुवा ॥

श्रीमदुदासीनपरमहंसपरमानंदसमाख्याधरेण काशी-निवासिना कृता तर्कसंग्रहभाषाटीका समाप्ता ॥

सम्वत् १९५३ ज्येष्ठ वदि १५

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाना,
कल्याण–मुंबई.